वेदाणं बंधाभावादो। कुदो, जम्मि जादीए उप्पज्जदि तज्जादिपडिबद्धवेदस्सेव भुंजमाणाउ-अस्स चरिमअंतोमुहुत्तम्मि णिरंतरबंधसंभवादो। तेण इत्थिपुरिसवेदाणं सगसगट्ठिदिसंत-कम्मादो संखेज्जभागब्भहियं कसायट्ठिदिं बंधाविय बंधावलियादिक्कंतं बज्झमाणित्थि-पुरिसवेदेसु संकामिदेसु संखेज्ज-भागवड्ढीए एगसमओ चेव लब्भदि।'' (ज.ध. / क.पा./ भा.४ / ट्ठिदिविहत्ती ३ / गा.२२ / अनुच्छेद २८९, पृ. १७०)।

अनुवाद—''स्त्रीवेद और पुरुषवेद की संख्यातभागवृद्धि का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। दो समय काल प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रियों में और त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, उनके अपनी आयु के अन्तिम समय में नपुंसकवेद को छोड़कर अन्य वेद का बन्ध नहीं होता, क्योंकि जो जीव जिस जाति में उत्पन्न होता है, उसके उस जाति से सम्बन्ध रखनेवाले वेद का ही भुज्यमान आयु के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में निरन्तर बन्ध सम्भव है। इसलिए स्त्रीवेद और पुरुषवेद की अपने-अपने स्थितिसत्कर्म से संख्यातवें भाग अधिक कषाय की स्थिति का बन्ध कराके बन्धावलि के बाद बँधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेद में उसके संक्रान्त होने पर संख्यातभागवृद्धि का एक समय ही प्राप्त होता है।''

इसका विशेषार्थ बतलाते हुए पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री एवं पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य लिखते हैं—''--- जो द्वीन्द्रिय से तेइन्द्रिय में और तेइन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं, उनके अपनी आयु के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में नपुंसकवेद के अतिरिक्त अन्य वेद का बन्ध नहीं होता, क्योंकि तेइन्द्रिय या चतुरिन्द्रिय जीव, जिनमें वे उत्पन्न होंगे, नियम से नपुंसकवेदी होते हैं और **सामान्य नियम यह है कि जो जीव जिस जाति में उत्पन्न होता है, उसके उस जाति से सम्बन्ध रखनेवाले वेद का ही भुज्यमान आयु के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में निरन्तर बन्ध सम्भव है।**'' (पृ.१७१)।

इसी प्रकार **ट्ठिदिविहत्ती** की २२वीं गाथा की जयधवला टीका के ५४ वें अनुच्छेद का विशेषार्थ प्रकाशित करते हुए उक्त विद्वानों ने लिखा है—''किन्तु तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक के स्त्रीवेद की और योनिमती तिर्यंच के पुरुषवेद और नपुंसकवेद की भुजगारस्थिति के सत्रह समय ही प्राप्त होते हैं, जिसका उल्लेख मूल में किया ही है। **बात यह है कि जो जिस वेद के साथ उत्पन्न होता है, उसके पूर्वपर्याय के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में वह वेद ही बँधता है,** अतः योनिमती तिर्यंच में उत्पन्न होनेवाले जीव के पूर्वपर्याय के अन्त में पुरुष व नपुंसकवेद का बन्ध नहीं होने से सोलह कषायों का उक्त वेदों में संक्रमण भी नहीं होता, अतः उक्त वेदों के भुजगार के अठारह समय घटित नहीं होते। इसी प्रकार पर्याप्त तिर्यंच के स्त्रीवेद के भुजगार का काल अठारह समय न कहकर सत्रह समय कहा है। सो यह सत्रह समय स्वस्थान की अपेक्षा जानना चाहिए।'' (ज.ध./क.पा./भा.४/ट्ठिदिविहत्ति ३/गा.२२/अनुच्छेद ५४/पृ.३०)।

इन कथनों से यह सामान्य नियम प्रकट होता है कि पूर्व भव की आयु के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में जिस नोकषायरूप भाववेद तथा नामकर्मरूप द्रव्यवेद का बन्ध होता है, उन्हीं का उदय उत्तरभव में होता है।[१५३] ऊपर कहा गया है कि "योनिमती तिर्यंच में उत्पन्न होनेवाले जीव के, पूर्वपर्याय के अन्त में पुरुष व नपुंसक वेद का बन्ध नहीं होता।" यहाँ **योनिमती** शब्द से स्पष्ट है कि द्रव्यवेद-नामकर्म का बन्ध भी पूर्वपर्याय के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में होता है। तथा नोकषायरूप भावपुरुषादिवेद एवं नामकर्मरूप द्रव्यपुरुषादिवेद का बन्ध समान परिणाम से होता है, क्योंकि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के उदयाभाव में जैसे नोकषयारूप स्त्री-नपुंसक-वेद का बन्ध नहीं होता, वैसे ही नामकर्मरूप स्त्री-नपुंसकवेद का भी बन्ध नहीं होता।[१५४] इसलिए जब नोकषयारूप पुरुषादिभाववेद के बन्धयोग्य परिणाम होता है, तब उसके साथ नामकर्मरूप पुरुषादिद्रव्यवेद भी बँधता है। पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में भी ऐसा ही होता है। **अतः उत्तरभव में जिस भाववेद और द्रव्यवेद का उदय होना है, वह सामान्यतः पूर्वभव में ही निर्धारित हो जाता है। इसलिए उत्तरभव में नोकषायरूप भाववेद के अनुसार द्रव्यवेद की रचना होती है, यह मान्यता आगमविरुद्ध है।**

किन्तु उत्तरभव में उदय में आनेवाले भाववेद और द्रव्यवेद का पूर्वभव में निर्धारित होना एक सामान्य नियम है। इसका अपवाद भी है, क्योंकि भट्ट अकलंकदेव ने कहा है—"**अतः पुंसोऽपि स्त्रीवेदोदयः। कदाचिद्योषितोऽपि पुंवेदोदयोऽप्याभ्यन्तरविशेषात्।**" (त.रा.वा.८/९/४/पृ.५७४)। अर्थात् आभ्यन्तर विशेषता के कारण कभी पुरुष में भी स्त्रीवेद का उदय हो जाता है और कभी स्त्री में भी पुरुषवेद उदय में आ जाता है।

उपर्युक्त सामान्य नियम का यह अपवाद सर्वज्ञोपदिष्ट ही है। तथा "**पुरुष में भी स्त्रीवेद का उदय और स्त्री में भी पुरुषवेद का उदय**" इस शब्दावली से द्योतित होता है कि जीव, द्रव्य से पुरुष या स्त्री तो पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में बाँधे गये पुरुषवेद-नामकर्म या स्त्रीवेद-नामकर्म के उदय से ही होता है, किन्तु उसमें भावस्त्रीवेद या भावपुरुषवेद का उदय अन्तिम अन्तर्मुहूर्त से पहले कभी बाँधे गये नोकषायरूप

---

१५३. "कपट, धोखे आदि के परिणामों से स्त्रीवेद का तीव्र अनुभाग लिए बन्ध होता है। जिस मनुष्य के मरते समय कपट-आदि रूप परिणाम होते हैं, वे मरकर मनुष्यनी व देवी होते हैं।" पं० रतनचन्द जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व/भाग १/पृ. ४३४।

१५४. सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः॥ १/३५॥ रत्नकरण्डश्रावकाचार।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

स्त्रीवेद या पुरुषवेद के उदय से होता है। और उसका उदय जीव के किसी आभ्यन्तर परिणामविशेष के निमित्त से होता है। तात्पर्य यह कि कर्मोदय के निमित्तभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव[१५५] इन पाँच प्रत्ययों में से भाव के निमित्त से उक्त नोकषायरूप भावस्त्रीवेद या भावपुरुषवेद का उदय होता है। वह भाव क्या है? यह प्रश्न उत्पन्न होने पर इसका समाधान सरलतया उपलब्ध हो जाता है। समाधान यह है कि जिस भाव या परिणाम से पुरुषवेद, स्त्रीवेद या नपुंसकवेद का बन्ध होता है, वही परिणाम यदि उत्तरभव के प्रथमसमय में जीव में उत्पन्न होता है, तो उससे सत्ता में स्थित नोकषायरूप भावपुरुषवेद, भावस्त्रीवेद या भावनपुंसकवेद का उदय हो जाता है, क्योंकि इन वेदों का उदय कराने में उसी जाति के परिणाम निमित्त हो सकते हैं, जिस जाति के परिणामों से उनका बन्ध होता है, अन्य कोई परिणाम निमित्त नहीं हो सकते। शास्त्रों में ऐसा कथन भी है। उदाहरणार्थ, मिथ्यात्वपरिणाम-विशेष से नपुंसकवेद का और अनन्तानुबन्धीकषाय-परिणामविशेष से स्त्रीवेद का बन्ध बतलाया गया है और सम्यग्दृष्टि जीव में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय का निषेध किया गया है,[१५६] इससे सिद्ध है कि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीजनित परिणामों से ही नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का उदय होता है। ऐसे परिणाम विग्रहगति में संभव हैं, क्योंकि उसमें औदारिक अंगोपांगनामकर्म का बन्ध होता है। अंगोपांगनामकर्म में स्त्री, पुरुष और नपुंसक शरीर के अंगोपांग शामिल हैं।[१५७] इनका बन्ध उन्हीं परिणामों से होता है, जिनसे नोकषायरूप स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेद का। अतः क्वचित् अपवादस्वरूप जो जीव उत्तरभव में द्रव्यपुरुष होनेवाला है, उसमें उत्तरभव की विग्रहगति में नोकषायरूप स्त्रीवेद या नपुंसकवेद का उदय हो जाता है। इसी प्रकार जो जीव उत्तरभव में द्रव्यस्त्री होनेवाला है, उसमें उत्तरभव की विग्रहगति में नोकषायात्मक पुरुषवेद या नपुंसकवेद उदय में आ जाता है। इस तरह वेदवैषम्य घटित होने की यह कर्म-सिद्धान्त-व्यवस्था उपर्युक्त आगमवचनों से सिद्ध होती है।

---

१५५. "कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकालभवभावप्रत्ययफलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाक-विचयः।" सर्वार्थसिद्धि ९/३६/८९०/ पृ.३५४-३५५।

१५६. "निर्वृत्त्यपर्याप्तासंयते स्त्रीवेदोदयो न हि, असंयतस्य स्त्रीत्वेनानुत्पत्तेः। षण्ढवेदोदयोऽपि च न हि, षण्ढत्वेनापि तस्यानुत्पत्तेः।" जीवतत्त्वप्रदीपिका/ गोम्मटसार-कर्मकाण्ड/ गा.२८७।

१५७. "ओरालियसरीर-हुंडसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-उवघात-पत्तेयसरीराणं पि सोदय-परोदओ, विग्गहगदीए उदयाभावे वि बंधुवलंभादो।" धवला/ष.खं./ पु.८/ ३,१०२/ पृ.१६४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उपसंहार

षट्खण्डागम के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण सूत्र रूप में

अन्त में उन प्रमाणों का सूत्ररूप में संकलन कर रहा हूँ, जिनसे सिद्ध होता है कि षट्खण्डागम दिगम्बर-परम्परा का ही ग्रन्थ है, उसकी रचना दिगम्बराचार्यों ने ही की है। वे इस प्रकार हैं—

१. श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों की स्थविरावलियों और साहित्य में न तो षट्खण्डागम के कर्त्ता (धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि) के नामों का उल्लेख है, न षट्खण्डागम का, न षट्खण्डागम की रचना के इतिहास का कोई विवरण है, न ही अर्धमागधी प्राकृत में षट्खण्डागम की कोई प्रति उपलब्ध है।

२. उक्त आचार्यों के नाम दिगम्बरपट्टावली और दिगम्बरसाहित्य में अनेकत्र उपलब्ध हैं। षट्खण्डागम के कर्त्ताओं के रूप में उनका उल्लेख है और षट्खण्डागम की रचना का इतिहास दिगम्बरसाहित्य में वर्णित है। शौरसेनी प्राकृत में रचित षट्खण्डागम ग्रन्थ की ताड़पत्रीय प्रतियाँ मूडविद्री के दिगम्बरमठ में उपलब्ध हुई हैं। दिगम्बराचार्यों ने उस पर टीकाएँ लिखी हैं। तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक में उसका अनुसरण किया गया है। गोम्मटसार जैसा महान् ग्रन्थ षट्खण्डागम के ही आधार पर रचा गया है।

३. षट्खण्डागम की रचना यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हो चुकी थी।

४. षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणा-अनुयोगद्वार का ९३ वाँ सूत्र स्त्रीमुक्तिनिषेधक है, जब कि यापनीयमत स्त्रीमुक्तिसमर्थक था।

५. षट्खण्डागम का गुणस्थानसिद्धान्त यापनीयसिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है। इससे निम्नलिखित यापनीय-मान्यताओं का निषेध होता है : मिथ्यादृष्टि की मुक्ति, परतीर्थिक-मुक्ति, गृहस्थमुक्ति, शुभाशुभक्रियाओं में प्रवृत्त लोगों की मुक्ति, सम्यग्दृष्टि की स्त्रीपर्याय में उत्पत्ति तथा स्त्री की तीर्थंकरपदप्राप्ति।

६. षट्खण्डागम में तीर्थंकरप्रकृति-बन्धक सोलहकारणों की स्वीकृति यापनीय-मान्यता के विरुद्ध है, क्योंकि यापनीयमत में बीस कारण मान्य हैं।

७. षट्खण्डागम में सवस्त्र स्थविरकल्प की अस्वीकृति यापनीयमत की अस्वीकृति है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

८. षट्खण्डागम में सोलहकल्पों ('कल्प' नामक स्वर्गों) की मान्यता यापनीय-मान्यता के विपरीत है। यापनीयमत में बारह कल्प माने गये हैं।

९. षट्खण्डागम में नौ अनुदिश नामक स्वर्गों का उल्लेख भी यापनीयमत के विरुद्ध है। यापनीय मत में इनका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया है।

१०. षट्खण्डागम में भाववेदत्रय, और वेदवैषम्य स्वीकार किये गये हैं, यापनीयमत में इनका निषेध है।

११. षट्खण्डागम में 'मणुसिणी' शब्द का प्रयोग द्रव्यस्त्री और भावस्त्री, दोनों अर्थों में किया गया है। तदनुसार आदि के पाँच गुणस्थानों के प्रसंग में वह द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों का वाचक है, किन्तु शेष गुणस्थानों के प्रसंग में केवल भावस्त्री का। यापनीयसम्प्रदाय के 'स्त्रीनिर्वाणप्रकरण' में 'मनुष्यिनी' या 'मानुषी' शब्द का प्रयोग केवल द्रव्यस्त्री के अर्थ में किया गया है।

ये प्रमाण सिद्ध करते हैं कि षट्खण्डागम न तो कपोलकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का ग्रन्थ है, न सचेलाचेलमिश्रमार्गी यापनीयसम्प्रदाय का, न एकान्त-सचेलमार्गी श्वेताम्बरसम्प्रदाय का, अपितु एकान्त-अचेलमार्गी दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

✧✧✧

नवम प्रकरण

डॉ० सागरमल जी के मत में परिवर्तन

षट्खण्डागम दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ

डॉ० सागरमल जी ने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ ई० सन् १९९६ में लिखा था। इसके नौ वर्ष बाद उनके निर्देशन में आदरणीया श्वेताम्बर साध्वी दर्शन-कलाश्री जी ने **'प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य में गुणस्थान की अवधारणा'** विषय पर शोधप्रबन्ध लिखा, जिस पर उन्हें ई० सन् २००५ में पी०-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। यह शोधप्रबन्ध ई० सन् २००७ में प्रकाशित हुआ। जब मेरा प्रस्तुत ग्रन्थ लिखा जा चुका था और उसका अन्तिम लिपिसंशोधन चल रहा था, तब डॉक्टर सा० की कृपा से मुझे उक्त शोधग्रन्थ की प्रति प्राप्त हुई। मैंने उसका अवलोकन किया और पाया कि डॉक्टर सा० ने उसके प्राक्कथन में **षट्खण्डागम** को यापनीयग्रन्थ न कहकर **दिगम्बरग्रन्थ** कहा है, और एक बार नहीं, अपितु जितनी बार षट्खण्डागम का उल्लेख किया है, उतनी बार उसके साथ 'दिगम्बरग्रन्थ' या 'दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ' विशेषण लगाया है। यथा—

१. ''**दिगम्बरपरम्परा** में गुणस्थानसिद्धान्त-सम्बन्धी सर्वप्रथम उल्लेख **षट्खण्डागम** और पूज्यपाद देवनन्दी की तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि नामक टीका में मिलता है।'' (वही / प्रस्ता. / पृ.२)।

२. ''**दिगम्बरग्रन्थ षट्खण्डागम** में भी इन १४ अवस्थाओं को पहले 'जीवसमास' के नाम से उल्लेखित किया गया है, बाद में उन्हें 'गुणस्थान' नाम दिया गया है।'' (वही / प्रस्ता. / पृ.३)।

३. ''गुणस्थानों का जीवस्थानों, मार्गणास्थानों तथा आठ कर्मों की विभिन्न प्रकृतियों के उदय, उदीरणा, सत्ता, बन्ध और निर्जरा से क्या सहसम्बन्ध है, इसका उल्लेख जहाँ **श्वेताम्बरपरम्परा** में कर्मग्रन्थों और पंचसंग्रह में उपलब्ध होता है, वहीं **दिगम्बरपरम्परा** में यह विवेचन मुख्यतः **षट्खण्डागम**, गोम्मटसार (१०वीं शती) और दिगम्बर प्राकृत एवं संस्कृत पंचसंग्रहों में उपलब्ध है।'' (वही / प्रस्ता./ पृ.३)।

४. ''**श्वेताम्बरपरम्परा** में **जीवसमास** और **दिगम्बरपरम्परा** में **षट्खण्डागम** गुणस्थानसिद्धान्त के प्रथम आधारभूत ग्रन्थ हैं।'' (वही / पृ.४)।

५. "---**दिगम्बरपरम्परा** में **षटखण्डागमकार** ने एवं आचार्य पूज्यपाद देवनन्दी से लेकर तत्त्वार्थसूत्र के सभी टीकाकारों ने इसकी (गुणस्थानों की) अपेक्षाकृत विस्तृत चर्चा की है।" (वही / पृ.४)।

यहाँ प्रश्न उठता है कि जब डॉक्टर सा० ने नौ वर्ष पूर्व लिखे गये अपने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में षट्खण्डागम को अपनी दृष्टि से यापनीयग्रन्थ सिद्ध किया था और उसके दिगम्बरग्रन्थ होने की मान्यता को जोर-शोर से खण्डन किया था, तब नौ वर्ष बाद साध्वी दर्शनकलाश्री जी के उपर्युक्त शोधग्रन्थ के प्राक्कथन में उसे हर बार **दिगम्बरग्रन्थ** नाम से सम्बोधित क्यों किया? यदि वह उनकी दृष्टि से वास्तव में यापनीयग्रन्थ है, दिगम्बरग्रन्थ नहीं है, तो यहाँ उसे यापनीय-ग्रन्थ न कहकर दिगम्बरग्रन्थ कहने का मिथ्यावचनाचार क्यों किया? किसी भी दृष्टि से इस मिथ्यावचना-चार का औचित्य सिद्ध नहीं होता। इससे सिद्ध है कि डॉक्टर सा० ने मिथ्याकथन न कर सत्यकथन किया है। नौ वर्ष के लम्बे अन्तराल में बहुशः चिन्तन-मनन से उन्हें इस सत्य की प्रतीति हुई कि षट्खण्डागम यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ है। इसलिए उन्होंने यहाँ अपनी भूल सुधार ली और इसे दिगम्बरग्रन्थ ही घोषित कर दिया।

डॉक्टर सागरमल जी ने अपने **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** नामक ग्रन्थ में भी अपने कुछ पूर्वमतों में आमूलचूल परिवर्तन किया है। उदाहरणार्थ, उन्होंने यह मान लिया कि १. तीर्थंकर महावीर का निर्ग्रन्थसंघ सर्वथा अचेल था, २. अचेल निर्ग्रन्थसंघ से सचेल श्वेताम्बरसंघ का उद्भव हुआ था और ३. श्वेताम्बरसंघ से यापनीय-संघ की उत्पत्ति हुई थी। (देखिये, अध्याय २ / प्र. ३ / शी. ५)। उपर्युक्त मतपरिवर्तन भी इसी मतपरिवर्तन-शृंखला की एक कड़ी है।

साध्वी दर्शनकलाश्री जी के मतानुसार षट्खण्डागम दिगम्बरग्रन्थ

डॉ० सागरमल जी के निर्देशन में पूर्वोक्त शोधप्रबन्ध लिखनेवाली श्वेताम्बरसाध्वी दर्शनकलाश्री जी ने दिगम्बर और यापनीय परम्पराओं के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में अत्यन्त भ्रान्तिग्रस्त रहते हुए भी षट्खण्डागम, कसायपाहुड, भगवती-आराधना और मूलाचार को दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ सिद्ध किया है। उनके निम्नलिखित वक्तव्यों से यह निर्णीत होता है—

"दिगम्बरपरम्परा के आगमतुल्य ग्रन्थों में षट्खण्डागम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दिगम्बरपरम्परा आगमसाहित्य का विच्छेद मानती है, किन्तु उसके अनुसार कसायपाहुड, षट्खण्डागम, मूलाचार, भगवती-आराधना आदि ग्रन्थ आगम-साहित्य के

आधार पर ही निर्मित हुए हैं।'' (प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य में गुणस्थान की अवधारणा / अध्याय ३ / पृ.८४)।

''जहाँ तक षट्खण्डागम की परम्पराओं का प्रश्न है, सामान्यतया षट्खण्डागम को दिगम्बरपरम्परा में आगमतुल्य ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत प्राप्त है। यद्यपि डॉ० सागरमल जी जैन ने 'जैनधर्म का यापनीसम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में इसे यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ माना है और इसके लिए अनेक प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं, फिर भी यापनीयसम्प्रदाय कुछ मतभेदों के साथ मूलतः तो अचेलपरम्परा का ही पक्षधर रहा है, इसमें कहीं कोई विवाद भी नहीं है। डॉ० सागरमल जी ने भी यापनीय-सम्प्रदाय को अचेलपरम्परा से ही सम्बन्धित माना है। अतः इस विवाद का कोई अर्थ नहीं रह जाता है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है या यापनीयपरम्परा का, क्योंकि यापनीयपरम्परा भी मूलतः दिगम्बरपरम्परा का ही अंग है, उसका ही एक उपसम्प्रदाय है। यह बात अलग है कि यापनीय-सम्प्रदाय स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि कुछ बातों में श्वेताम्बरपरम्परा से सहमति रखता है, किन्तु इस आधार पर उसे श्वेताम्बर तो नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वह भी अचेलता का इतना ही सम्पोषक है, जितनी दिगम्बरपरम्परा।'' (वही / अध्याय ३ / पृ. ८४-८५)।

''दिगम्बरपरम्परा में भगवती-आराधना को आगमतुल्य एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। यद्यपि डॉ० सागरमल जैन ने अपने ग्रन्थ 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' में इसको यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ माना है। यापनीयपरम्परा आगमों और स्त्रीमुक्ति की सम्पोषक होते हुए भी मुनि की अचेलता की ही पक्षधर रही है, इस दृष्टि से वह दिगम्बरपरम्परा का ही रूप मानी जाती है।'' (वही / अध्याय ३ / पृ. १७३)।

''मूलाचार दिगम्बरपरम्परा में मुनि-आचार से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। भगवती-आराधना के समान ही, इस ग्रन्थ की मूलपरम्परा दिगम्बर या यापनीय है, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। पण्डित नाथूराम जी प्रेमी, डॉ० सागरमल जैन आदि कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यह ग्रन्थ यापनीयपरम्परा का है। किन्तु यदि हम समन्वय की दृष्टि से कहना चाहें, तो इतना निर्विवादरूप से कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ मुख्यतः अचेलपरम्परा का सम्पोषक है तथा यापनीय और दिगम्बर दोनों की परम्पराएँ अचेलता की सम्पोषक रही हैं।' (वही / अध्याय ३ / पृ. १७८)।

''तृतीय अध्याय में दिगम्बरपरम्परा तथा यापनीयपरम्परा में मान्य आगमतुल्य ग्रन्थों यथा-कसायपाहुड, षट्खण्डागम, मूलाचार, भगवती-आराधना एवं आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में उपलब्ध गुणस्थान-सम्बन्धी विवरण को सहयोजित किया गया है।'' (वही/ स्वकथ्यम् / पृ.४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इन वक्तव्यों में साध्वी जी ने दिगम्बर और यापनीय दोनों परम्पराओं को अचेल माना है और षट्खण्डागम, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि को अचेलपरम्परा से सम्बद्ध मानकर दिगम्बर और यापनीय दोनों परम्पराओं का ग्रन्थ बतलाया है। किन्तु उन्होंने यापनीयपरम्परा को दिगम्बरपरम्परा का अंग, दिगम्बरपरम्परा का एक उपसम्प्रदाय और दिगम्बरपरम्परा का रूप मानकर यह मान्यता प्रकट की है कि 'दिगम्बरपरम्परा मूल एवं पूर्ववर्ती है तथा यापनीयपरम्परा उससे उद्भूत अत एव उत्तरवर्ती है। अतः षट्खण्डागम, कसायपाहुड, भगवती-आराधना एवं मूलाचार मूलतः दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थ हैं, यापनीयपरम्परा को वे दिगम्बरपरम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे।'

तथापि साध्वी जी ने दिगम्बर और यापनीय दोनों परम्पराओं को अचेलता का सम्पोषक मानकर उनमें जो एकत्व (अभेद) दर्शाने का प्रयास किया है, वह प्रमाणविरुद्ध है। दोनों परम्पराओं में एकत्व होना तो दूर की बात, ये एक-दूसरे के अत्यन्त विरुद्ध हैं। यथा—

१. दिगम्बर और यापनीय दोनों परम्पराएँ अचेलता की सम्पोषक नहीं है, केवल दिगम्बरपम्परा अचेलता की सम्पोषक है। यापनीयपरम्परा अचेलता और सचेलता दोनों की सम्पोषक थी, क्योंकि वह केवल अचेललिंगधारी (जिनकल्पी) मुनि को ही मोक्ष का पात्र नहीं मानती थी, अपितु सचेललिंगधारी (स्थविरकल्पी) मुनि को भी मोक्ष का अधिकारी मानती थी। इसका प्ररूपण यापनीय आचार्य **पाल्यकीर्ति शाकटायन** ने **स्त्रीनिर्वाणप्रकरण** नामक लघुग्रन्थ की १० वीं कारिका से लेकर २१वीं कारिका तक किया है। (देखिये, 'मूलाचार' नामक पञ्चदश अध्याय / प्रकरण १ / शीर्षक २)।

२. सवस्त्रमुक्ति की निषेधक होने से दिगम्बरपरम्परा स्त्रियों, गृहस्थों और अन्य-लिंगी साधुओं को मुक्ति का अधिकारी नहीं मानती, किन्तु यापनीयपरम्परा मानती थी। इससे भी सिद्ध है कि यापनीयसम्प्रदाय अचेलत्व और सचेलत्व दोनों का समर्थक था।

इन दो प्रमाणों से निर्णीत होता है कि दिगम्बरपरम्परा अचेलत्व की निरपवादरूप से सम्पोषक है, किन्तु यापनीयपरम्परा निरपवादरूप से सम्पोषक नहीं थी। उसने अचेलत्व को वैकल्पिकरूप में स्वीकार किया था। अतः दोनों में एकत्व मानकर यापनीयपम्परा को दिगम्बरपरम्परा का ही अंग, दिगम्बरपरम्परा का एक उपसम्प्रदाय या दिगम्बरपरम्परा का रूप मानना एक अत्यन्त मिथ्या आकलन है। वह न तो दिगम्बरपरम्परा का अंग थी, न उसका एक उपसम्प्रदाय, न उसका रूप। उसका उद्भव श्वेताम्बरपरम्परा से हुआ था, यह डॉ० सागरमल जी ने भी स्वीकार किया है तथा यह मुख्यतः इस

तथ्य से सिद्ध होता है कि उसकी शतप्रतिशत मान्यताएँ, जैसे सचेलमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति, भगवान् महावीर के गर्भपरिवर्तन इत्यादि की मान्यताएँ वे ही थीं, जो श्वेताम्बरपरम्परा की हैं। उसने केवल अचेललिंग से मुक्ति की मान्यता दिगम्बरपरम्परा से ग्रहण की थी, किन्तु अचेललिंग को सचेललिंग के विकल्प रूप में स्वीकार कर उसे दिगम्बरमान्यता नहीं रहने दिया। इस तरह श्वेताम्बरपरम्परा की शतप्रतिशत मान्यताओं और आगमों को स्वीकार करने से सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा श्वेताम्बरपरम्परा का ही अंग या उपसम्प्रदाय थी। इसलिए कषायपाहुड, षट्खण्डागम आदि ग्रन्थ जैसे सचेल श्वेताम्बरपरम्परा के ग्रन्थ नहीं हैं, वैसे ही सचेलाचेल यापनीयपरम्परा के भी नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त कषायपाहुड, षट्खण्डागम, भगवती-आराधना और मूलाचार में दिगम्बरमत के अनुकूल एवं यापनीयमत के प्रतिकूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। (देखिये, प्रस्तुतग्रन्थ के अध्याय ११, १२, १३, १४ एवं १५)। इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि ये दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थ हैं, यापनीयपरम्परा के नहीं। अतः साध्वी दर्शनकलाश्री जी का इन्हें दिगम्बर और यापनीय दोनों परम्पराओं का ग्रन्थ मानना प्रमाणविरुद्ध है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वादश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वादश अध्याय

कसायपाहुड

प्रथम प्रकरण

यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु

डॉ० सागरमल जी ने कसायपाहुड के सम्प्रदाय के विषय में परस्पर-विरोधी दो मत प्रतिपादित किये हैं और उनके पक्ष में **जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय** नामक ग्रन्थ में निम्नलिखित हेतु प्रस्तुत किये हैं—

१

पहला मत और उसके पोषक हेतु

१. कसायपाहुड श्वेताम्बरों और यापनीयों की उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-मातृपरम्परा का ग्रन्थ है। यह श्वेताम्बरों और यापनीयों को इस परम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। (जै.ध.या.स./पृ.८९)।

२. दिगम्बरपट्टावलियों में कसायपाहुड के कर्त्ता गुणधर और आचार्यपरम्परा से उसका ज्ञान प्राप्त करनेवाले तथा यतिवृषभ को उसकी शिक्षा देनेवाले आर्य मंक्षु और नागहस्ती के नाम नहीं मिलते। अतः ये दिगम्बरपरम्परा के आचार्य नहीं थे। (जै.ध.या.स./पृ.८२, ८३, ८६)।

३. आर्यमंक्षु (आर्यमंगु) और नागहस्ती के नाम श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में मिलते हैं। अतः वे श्वेताम्बरों और यापनीयों की उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-मातृपरम्परा के आचार्य थे। (जै.ध.या.स./पृ.८३, ८५, ८७)। यतिवृषभ ने उनसे अर्धमागधी में रचित कसायपाहुड का अध्ययन कर उसे शौरसेनी में रूपान्तरित किया और उस पर चूर्णिसूत्र रचे। (जै.ध.या.स./पृ.८५, ८७)।

४. उत्तरभारत की सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा में रचित होने से यह ग्रन्थ उत्तराधिकार में श्वेताम्बरों और यापनीयों को ही प्राप्त हो सकता था, दक्षिणभारत में उत्पन्न हुई एकान्त-अचेलमार्गी दिगम्बर-परम्परा के आचार्यों को नहीं।

(जै.ध.या.स./पृ.८५)। चूँकि यह यतिवृषभ को प्राप्त हुआ था, इसलिए वे यापनीय-आचार्य थे।

५. यतिवृषभ के नाम के आदि में **यति** शब्द जुड़ा हुआ है। इसका प्रयोग यापनीय आचार्य अपने नाम के साथ करते थे। अतः यतिवृषभ यापनीय थे। (जै.ध.या.स./पृ.८७)।

६. कसायपाहुड में स्त्री, पुरुष और नपुंसकों के अपगतवेदी होकर चतुर्दशगुणस्थान तक पहुँचने की बात कही गई है, जिससे उसमें स्त्रीमुक्ति का समर्थन है। (जै.ध.या.स./पृ.८७,८८) यह उसके श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ होने का प्रमाण है।

७. कसायपाहुड और श्वेताम्बर-आगम समवायांग में क्रोध, मान, माया और लोभ के समान पर्यायवाचियों का वर्णन है। इससे कसायपाहुड श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध होता है। (जै.ध.या.स./पृ.८९)।

८. ग्रन्थकार, चूर्णिसूत्रकार तथा जयधवला-टीकाकार के मतों में कहीं-कहीं भेद है, जिससे सिद्ध होता है कि कसायपाहुड के कर्त्ता श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा के आचार्य थे, चूर्णिकार यापनीयपरम्परा के और जयधवलाकार दिगम्बरपरम्परा के। (जै.ध.या.स./पृ.८८)।

९. श्वेताम्बरपरम्परा का अर्धमागधी-कसायपाहुड उपलब्ध नहीं है। जो उपलब्ध है वह शौरसेनी में होने से श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं है। (जै.ध.या.स./पृ.८६)। वह श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ है, जिसका यतिवृषभ ने शौरसेनीकरण किया है।

२

दूसरा मत और उसके पोषक हेतु

१. कसायपाहुड में गुणस्थानसिद्धान्त पूर्णविकसित रूप में उपलब्ध होता है। इससे सिद्ध होता है कि उसकी रचना तब हुई थी, जब गुणस्थानसिद्धान्त ने धीरे-धीरे विकसित होते हुए अपना अन्तिम स्वरूप ग्रहण कर लिया था, अर्थात् तत्त्वार्थसूत्र की रचना के बाद लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी ई० में। (जै.ध.या.स./पृ.११२)।[१]

१. डॉ० सागरमल जी ने तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ (पृ.११२) में ईसा की दूसरी-तीसरी शती माना है, जबकि उन्होंने ही साध्वी विद्युत्प्रभाश्री द्वारा अनुवादित 'जीवसमास' की भूमिका (पृ.ii) में ईसा की तीसरी-चौथी शती बतलाया है। उनके इस द्वितीय मत के अनुसार गुणस्थानसिद्धान्त ने अपना अन्तिम स्वरूप ईसा की पाँचवीं-छठी शती में ग्रहण किया था। अतः वे कसायपाहुड का रचनाकाल ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी भी मानते हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२. आर्यमंक्षु और नागहस्ती का समय ई० सन् की द्वितीय शताब्दी है, इसलिए वे कसायपाहुड के रचयिता नहीं हो सकते। मात्र यही माना जा सकता है कि उसकी रचना का आधार उनकी कर्मसम्बन्धी अवधारणाएँ हैं। (जै.ध.या.स./पृ.११२)।

३. चूँकि गुणधर आर्यमंक्षु और नागहस्ती के गुरु थे, इसलिए इनसे भी पूर्ववर्ती होने के कारण गुणधर को भी तीसरी-चौथी शती ई० में रचित कसायपाहुड का कर्त्ता नहीं माना जा सकता।

४. यतिवृषभ ने कसायपाहुड पर केवल चूर्णिसूत्र लिखे थे और वे छठी-सातवीं शताब्दी ई० में हुए थे, अतः उन्हें भी कसायपाहुड का रचयिता मानना संभव नहीं।

इन चार आचार्यों के अतिरिक्त अन्य किसी का नाम कसायपाहुड के साथ जुड़ा नहीं है, अतः अन्य किसी को उसका कर्त्ता मानने का प्रश्न नहीं उठता। इस प्रकार इस दूसरे मत में यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक डॉ० सागरमल जी कसायपाहुड के कर्त्ता का ही निर्णय नहीं कर पाते, अतः उसके सम्प्रदाय के निर्णय का प्रश्न ही निरस्त हो जाता है।

३
दूसरे मत से पहले मत का निरसन

यापनीयपक्षी मान्य विद्वान् का दूसरा मत पहले मत को मिथ्या सिद्ध कर देता है जिससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि उसकी पुष्टि के लिए उन्होंने जितने भी हेतु उपस्थित किये थे, वे सब मिथ्या थे, मनगढ़ंत थे। पहले मत के मिथ्या सिद्ध हो जाने से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१. कसायपाहुड की रचना श्वेताम्बरों और यापनीयों की तथाकथित उत्तरभारतीय सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-मातृपरम्परा में नहीं हुई थी। अतः वह उस परम्परा का ग्रन्थ नहीं है।

२. इसलिए न तो वह श्वेताम्बरों को उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था, न यापनीयों को।

३. वर्तमान कसायपाहुड शौरसेनी प्राकृत में है, इसलिए वह श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है। यह उक्त मान्य विद्वान् का ही मत है।

४. कसायपाहुड के कर्त्ता के रूप में गुणधर के अतिरिक्त अन्य कोई भी आचार्य प्रसिद्ध नहीं हैं और वे यापनीय थे नहीं, इसलिए वह यापनीय-आचार्य द्वारा भी रचित नहीं है। उक्त मान्य विद्वान् ने भी स्वीकार किया है कि वह यापनीय-परम्परा में निर्मित नहीं हुआ था। (जै.ध.या.स./पृ.८७)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यह तो यापनीयपक्षधर मान्य विद्वान् के पूर्वमत का उनके ही उत्तरमत से मिथ्या सिद्ध होने का प्रमाण है। निम्नलिखित प्रमाणों से भी वह मिथ्या सिद्ध होता है—

१. यापनीयपक्षधर मान्य विद्वान् ने जिस उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा में कसायपाहुड की रचना मानी थी, उसका अस्तित्व ही नहीं था। वह उन्हीं के द्वारा कल्पित है। यह द्वितीय अध्याय के तृतीय प्रकरण में दर्शाया जा चुका है।

२. जिस परम्परा का अस्तित्व ही नहीं था, उसमें कसायपाहुड के रचे जाने तथा श्वेताम्बरों और यापनीयों को उत्तराधिकार में प्राप्त होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः उक्त परम्परा से श्वेताम्बरों और यापनीयों को कसायपाहुड उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था, यह मत भी मिथ्या है।

४

दूसरा मत कसायपाहुड के सम्प्रदाय का अनिर्णायक

दूसरे मत में तो यापनीयपक्षधर विद्वान ने गुणधर, आर्यमंक्षु, नागहस्ती और यतिवृषभ, इनमें से किसी को भी कसायपाहुड का कर्त्ता स्वीकार नहीं किया है और किसी पाँचवे को उसका कर्त्ता बतला नहीं सके। इससे भी सिद्ध है कि वह न यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है, न श्वेताम्बरपरम्परा का, न श्वेताम्बर-यापनीयों की मातृपरम्परा का।

५

निरन्तर बदलते हुए पूर्वापरविरोधी मत

जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय ग्रन्थ का कसायपाहुड-प्रकरण निरन्तर बदलते हुए पूर्वापरविरोधी मतों से भरा पड़ा है। यह इस बात का सबूत है कि ग्रन्थलेखक के पास कसायपाहुड को यापनीयपरम्परा या उसकी मनःकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं था। लेखक ने कपोलकल्पित हेतुओं के द्वारा उसे हठात् उक्त परम्पराओं का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए पसीना बहाया है। इसी के फलस्वरूप पूर्वापरविरोधों की उत्पत्ति हुई है। उपर्युक्त ग्रन्थ में लेखक के पूर्वापरविरोधी मतों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. शुरू में वे कहते हैं—"षट्खण्डागम, कसायपाहुड, भगवती-आराधना, मूलाचार जैसे महत्त्वपूर्ण शौरसेनी आगमिक ग्रन्थ यापनीय-आचार्यों की ही कृतियाँ हैं।" (पृ.८२)। इसी बात को वे इन शब्दों में दुहराते हैं—"यही बोटिकपरम्परा आगे चलकर यापनीय कहलायी। कसायपाहुड इसी बोटिक या यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है।" (पृ.८४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आगे चलकर उक्त ग्रन्थलेखक इसके यापनीयग्रन्थ होने का निषेध कर देते हैं—''यह ग्रन्थ यापनीय-परम्परा में निर्मित न होकर भी यापनीयों को उत्तराधिकार में मिला है।'' (पृ.८७)।

२. फिर वे इसके श्वेताम्बरग्रन्थ होने का भी खण्डन करते हैं—''श्वेताम्बर-परम्परा में कोई भी शौरसेनी प्राकृत की रचना उपलब्ध नहीं है। अतः कसायपाहुड के वर्तमान स्वरूप को श्वेताम्बर-परम्परा की रचना तो नहीं कहा जा सकता, जैसा कि कल्याणविजय जी ने माना है।'' (पृ.८५)।

इसके बाद वे इसे श्वेताम्बरों और यापनीयों की उत्तरभारतीय-अविभक्त-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-मातृपरम्परा का ग्रन्थ बतलाते हैं। कसायपाहुड और समवायांगसूत्र में क्रोधादि भावों के जो समान पर्यायवाची उपलब्ध हैं, उनके उदाहरण देकर वे लिखते हैं—

''इससे यही सिद्ध होता है कि कसायपाहुड उत्तरभारत की अविभक्त निर्ग्रन्थ परम्परा का ग्रन्थ है, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों को समानरूप से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था।'' (पृ.८९)।

इसका तात्पर्य यह है कि उत्तराधिकार में प्राप्त यह ग्रन्थ जैसे यापनीयों के पास शौरसेनी भाषा में उपलब्ध है, वैसे ही श्वेताम्बरों के पास अर्धमागधी में उपलब्ध होगा। पर यापनीयपक्षी विद्वान् ने, न तो अर्धमागधी में उपलब्ध किसी प्रति का उल्लेख किया है, न ही किसी श्वेताम्बरग्रन्थ या पट्टावली में यह उल्लेख मिलता है कि कसाय-पाहुड श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है अथवा उसके रचयिता गुणधर या आर्यमंक्षु एवं नागहस्ती हैं।

३. एक तरफ मान्य विद्वान लिखते हैं कि ''सामान्यतया इस (कसायपाहुड के प्रतिपाद्य विषय की) चर्चा में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके आधार पर ग्रन्थ के सम्प्रदाय-विशेष का निश्चय हो सके।'' (पृ.८७)। दूसरी तरफ वे ऐसा 'कुछ' ढूँढ़ भी लेते हैं और उसकी स्वच्छन्द व्याख्या कर कसायपाहुड को अपनी मनःकल्पित श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ घोषित कर देते हैं। उदाहरणार्थ, कसायपाहुड में स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद तीनों के साथ नौवें गुणस्थान तक पहुँचने की बात कही गई है। इससे मान्य विद्वान् कसायपाहुड में स्त्रीमुक्ति का समर्थन मान लेते हैं और उसे श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ घोषित कर देते हैं। वे लिखते हैं—''यदि कसायपाहुड के कर्त्ता यह स्वीकार करते हैं कि स्त्रीवेद की उपस्थिति में दसवें गुणस्थान तक आध्यात्मिक विकास संभव है, तो वे स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं कर सकते।'' (पृ.८८)।

४. एक ओर उक्त विद्वान् कहते हैं—"(कसायपाहुड के कर्त्ता) आचार्य गुणधर कौन थे और किस परम्परा के थे, इसकी सूचना हमें न तो प्राचीन श्वेताम्बर आगमिक स्थविरावलियों से और न ही दिगम्बर-पट्टावलियों से प्राप्त होती है।" (पृ.८२)। दूसरी ओर वे लिखते हैं कि श्वेताम्बर-पट्टावलियों में गुणधर का उल्लेख है। देखिए उनके शब्द—"प्राचीन दिगम्बर-पट्टावलियों में गुणधर, आर्यमंक्षु और नागहस्ती का, जो कि इसके (कसायपाहुड के) कर्त्ता या प्रणेता माने गये हैं, उल्लेख नहीं होने से और श्वेताम्बर-पट्टावलियों में इनका उल्लेख होने से यह सिद्ध होता है कि यह मूलतः दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है।" (पृ.८६-८७)।

५. एक तरफ वे आर्यमंक्षु और नागहस्ती को यापनीयसंघ की उत्पत्ति के पूर्व का मानते हैं, दूसरी तरफ उनके साक्षात् शिष्य यतिवृषभ को यापनीय मानते हैं। यह परस्परविरोध डॉक्टर सा० के निम्नलिखित कथनों से स्पष्ट होता है—

"वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ आर्यमंक्षु और नागहस्ती की उस अविभक्त परम्परा में निर्मित हुआ है, जिसका उत्तराधिकार समानरूप से यापनीयों को भी प्राप्त हुआ था। संभावना यही है कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती से अध्ययन करके यतिवृषभ ने ही इसे शौरसेनी प्राकृत का वर्तमानस्वरूप प्रदान कर चूर्णिसूत्र की रचना की हो।" (पृ.८५)।

"इतना निश्चित है कि आर्यमंक्षु और आर्य नागहस्ती न तो दिगम्बर-आचार्य हैं, और न यापनीय ही। यद्यपि इतना भी निश्चित है कि वे श्वेताम्बरों के समान यापनीयों के भी पूर्वज हैं।" (पृ.८७)।

"हो सकता है कि इस पर चूर्णिसूत्रों के रचयिता यतिवृषभ यापनीय हों, क्योंकि यापनीयों में अपने नाम के आगे 'यति' शब्द लगाने की प्रवृत्ति रही है, जैसे—**यतिग्रामाग्रणी भदन्त शाकटायन।**" (पृ.८७)।

६. एक जगह पर पूर्वोक्त विद्वान् जयधवलाकार के इस कथन को माने लेते हैं कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती से कसायपाहुड का अध्ययन कर यतिवृषभाचार्य ने चूर्णिसूत्रों की रचना की थी और वे स्वयं सिद्ध करते हैं कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती का स्थितिकाल ईसा की प्रथम-द्वितीय शताब्दी था, जिसका तात्पर्य यह है कि उनके अनुसार यतिवृषभ भी प्रथम-द्वितीय शताब्दी में हुए थे, किन्तु दूसरी जगह पर वे लिखते हैं कि जयधवलाकार का यह कथन विश्वसनीय नहीं है। उनके प्रथम कथन पर दृष्टिपात कीजिए—

"अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर इतना निश्चित है कि ये सभी ईस्वी सन् की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी में हुए हैं। --- सम्भावना यही है

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती से अध्ययन करके यतिवृषभ ने ही इसे (कसायपाहुड को) शौरसेनी प्राकृत का वर्तमान स्वरूप प्रदानकर चूर्णिसूत्र की रचना की हो।'' (पृ.८५)।

अब ठीक इसके विपरीत दूसरे कथन पर दृष्टि डालें—''जहाँ तक यतिवृषभ और उनके कसायपाहुड-चूर्णिसूत्रों के रचनाकाल का प्रश्न है, जयधवला के अनुसार यतिवृषभ आर्यमंक्षु के शिष्य और आर्य नागहस्ती के अन्तेवासी थे और उन्होंने उन्हीं से कसायपाहुड का अध्ययन कर चूर्णिसूत्रों की रचना की थी, किन्तु इस कथन की विश्वसनीयता सन्देहास्पद है।'' (पृ.१११)। ''श्वेताम्बरपरम्परा की कम्मपयडीचूर्णि, सतकचूर्णि और सित्तरीचूर्णि से शैलीगत निकटता भी यही सूचित करती है कि कसायपाहुडचूर्णि का रचनाकाल भी लगभग छठी-सातवीं शती होगा और इसी आधार पर यतिवृषभ का काल भी यही मानना होगा।'' (पृ.१११)।

७. इसी तरह पूर्व में वे निर्णय देते हैं कि कसायपाहुड आर्यमंक्षु और नागहस्ती की उत्तरभारतीय-अविभक्त-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा का ग्रन्थ है। (पृ.८५)। किन्तु, बाद में वे अपना निर्णय बदल देते हैं और कहते हैं—''यदि हम कसायपाहुड में प्रस्तुत गुणस्थान की अवधारणा पर विचार करें तो ऐसा लगता है कि कसायपाहुड की रचना गुणस्थानसिद्धान्त की अवधारणा के निर्धारित होने के बाद हुई है। अर्धमागधी आगमसाहित्य में, यहाँ तक की प्रज्ञापना जैसे विकसित आगम और तत्त्वार्थसूत्र में भी गुणस्थान का सिद्धान्त सुव्यवस्थित रूप नहीं ले पाया था, जब कि कसायपाहुड गुणस्थानसिद्धान्त के सुव्यवस्थित रूप लेने के बाद ही रचा गया है। अतः यदि तत्त्वार्थ (तत्त्वार्थसूत्र) का रचनाकाल ईसा की दूसरी-तीसरी शती है, तो उसका काल ईसा की तीसरी-चौथी शती मानना होगा।'' (पृ.११२)।

८. यापनीयपक्षी विद्वान् के एक और पूर्वापरविरोधी कथन पर दृष्टिपात कीजिए। पूर्व में वे यह स्वीकार करते हैं कि कसायपाहुड की गाथाओं के कर्त्ता गुणधर थे और आर्यमंक्षु और नागहस्ती को वे आचार्यपरम्परा से प्राप्त हुई थीं।[२] किन्तु बाद में मान्य विद्वान् के ध्यान में आया कि कसायपाहुड में गुणस्थानसिद्धान्त विद्यमान है, अतः उसे यदि आर्यमंक्षु और नागहस्ती के पूर्व निर्मित स्वीकार किया जाय, तो गुणस्थानसिद्धान्त बहुत प्राचीन सिद्ध हो जाता है। इसलिए वे अपने पूर्व बयान से हट गये और यह नया बयान जारी कर दिया—

---

२. ''यह तो निर्विवाद है कि यह सिद्धान्तग्रन्थ आर्यमंक्षु और आर्य नागहस्ती को प्राप्त था। --- वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ आर्यमंक्षु और नागहस्ती की उस अविभक्त परम्परा में निर्मित हुआ है ---।'' (जै.ध.या.स. / पृ.८५)

"गुणस्थानसिद्धान्त के विकास की दृष्टि से यह मानना होगा कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती कर्मप्रकृतियों के विशिष्ट ज्ञाता थे, वे कसायपाहुड के वर्तमान स्वरूप के प्रस्तोता नहीं थे। मात्र यही माना जा सकता है कि कसायपाहुड की रचना का आधार उनकी कर्मसिद्धान्त-सम्बन्धी अवधारणाएँ हैं, क्योंकि आर्यमंक्षु और नागहस्ती का काल ई० सन् की दूसरी शताब्दी है।" (पृ.११२)।

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि कसायपाहुड की रचना आर्यमंक्षु और नागहस्ती की कर्मसिद्धान्तीय अवधारणाओं के आधार पर हुई है, तो उसका रचयिता कौन है? कसायपाहुड का वर्तमान स्वरूप गुणधर और आचार्यपरम्परा से आर्यमंक्षु और नागहस्ती ने प्रस्तुत नहीं किया, तो किसने किया? उक्त यापनीयपक्षी विद्वान् इस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देते हैं।

किन्तु, आगे चलकर वे पुनः गुणधर, आर्यमंक्षु और नागहस्ती को कसायपाहुड का कर्त्ता-प्रस्तोता मानने के लिए तैयार हो जाते हैं। उपर्युक्त वक्तव्य के तुरन्त बाद वे अपना दूसरा वक्तव्य इस प्रकार देते हैं—"यदि हम प्रज्ञापना के कर्त्ता आर्यश्याम के बाद नन्दीसूत्र-स्थविरावली में उल्लिखित स्वाति को तत्त्वार्थ के कर्त्ता उमास्वाति मानें अथवा उमास्वाति का काल कम से कम ईसा की प्रथम शताब्दी मानें, तब ही कसायपाहुड के कर्त्ता और प्रस्तोता के रूप में गुणधर, आर्यमंक्षु और नागहस्ती को स्वीकार किया जा सकता है।" (पृ.११२-११३)।

इस प्रकार यापनीयपक्षी विद्वान् के ग्रन्थ का कसायपाहुड-प्रकरण पूर्वापरविरोधी मतों से भरा पड़ा है, जो इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने कसायपाहुड को यापनीयपरम्परा या उसकी मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए अन्धकार में तीर चलाने की कोशिश की है।

हम देखते हैं कि प्रमाणों के अभाव में केवल कपोलकल्पनाओं के आधार पर कसायपाहुड को यापनीयपरम्परा का अथवा श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने की चेष्टा में मान्य विद्वान् को अपने मत में निरन्तर परिवर्तन करते रहना पड़ा है—

१. पहले उन्होंने कसायपाहुड को यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ घोषित किया था।

२. फिर इससे इनकार कर दिया और उसे आर्यमंक्षु और नागहस्ती की उत्तर-भारतीय सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा में निर्मित बतलाया।

३. पश्चात् इसे भी अस्वीकार कर दिया और मौन हो गये। फिर न यह बतलाया कि कसायपाहुड की रचना किस परम्परा में हुई, और न यह कि उसका कर्त्ता कौन है?

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यह निरन्तर मतपरिवर्तन इस बात का प्रमाण है कि 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक महोदय के पास कसायपाहुड को यापनीयपरम्परा, श्वेताम्बरपरम्परा या दोनों की मनःकल्पित मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए कोई भी प्रमाण नहीं है। **पहले वे उसे यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने का उपक्रम करते हैं, तो ग्रन्थ के कर्त्ता आदि (गुणधर, आर्यमंक्षु और नागहस्ती) के स्थितिकाल और यापनीय-सम्प्रदाय के उत्पत्तिकाल में वैषम्य बाधक बन जाता है। फिर श्वेताम्बर-यापनीयों की मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए उद्यत होते हैं, तो गुणस्थान-विकास के कल्पित मत की दीवारें ढहने लगती हैं। यदि श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने की ओर झुकते हैं, तो कसायपाहुड की शौरसेनी भाषा अँगूठा दिखाने लगती है। अतः अन्त में हारकर अपनी कलम नीची कर देते हैं।** यह विफलता इस बात की सूचक है कि यापनीयपक्षपोषक ग्रन्थलेखक डॉ० सागरमल जी के पास इस सत्य को झुठलाने के लिए कोई प्रमाण नहीं था कि कसायपाहुड दिगम्बराचार्य-कृत ग्रन्थ है। वे मनःकल्पित हेतुओं और छलवाद के द्वारा ऐसा करना चाहते थे, जिससे हर बार कोई न कोई यथार्थ बीच में आकर बाधक बन गया और वे अपने उद्देश्य की सिद्धि में विफल हो गये। अन्त में यही सत्य विजयी रहा कि कसायपाहुड दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

✧✧✧

द्वितीय प्रकरण

दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

१

अन्तरंग प्रमाण

यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों की उपलब्धि

यहाँ वे अन्तरंग प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि कसायपाहुड न तो यापनीयग्रन्थ है, न श्वेताम्बरग्रन्थ, न दोनों की कपोलकल्पित मातृपरम्परा का ग्रन्थ, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। वे अन्तरंग प्रमाण हैं कसायपाहुड में यापनीय एवं श्वेताम्बर मतों के विरुद्ध सिद्धान्तों की उपलब्धि।

१.१. वेदत्रय एवं वेदवैषम्य का प्रतिपादन

कसायपाहुड में भाववेदत्रय और वेदवैषम्य स्वीकार किये गये हैं। निम्नलिखित गाथाओं से इस बात की पुष्टि होती है—

अणमिच्छ-मिस्स-सम्मं अट्ठ णवुंसित्थिवेदछक्कं च।
पुंवेदं च खवेदि दु कोहादीए च संजलणे॥ १॥

क्षपणाधिकार-चूलिका / क.पा. / भा.१६।

अनुवाद—"मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हुआ जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्क, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, इन सात प्रकृतियों का क्षपकश्रेणी चढ़ने से पूर्व ही क्षपण करता है। पुनः क्षपकश्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरण-गुणस्थान में अन्तरकरण के पश्चात् ही आठ मध्यम कषायों (अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क एवं प्रत्याख्यानावरण-चतुष्क) का क्षय करता है। पुनः नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय और पुरुषवेद का क्षय करता है। तदनन्तर संज्वलनक्रोध आदि चार कषायों का क्षय करता है।" (देखिये, जयधवला/अनुच्छेद ३१६/ क.पा./भाग १६/पृ.१३९-१४०)।

संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव।
सत्तेण णोकसाये णियमा कोहम्हि संछुहदि॥ १३८॥

चारित्रमोह-क्षपणाधिकार / क.पा. / भा.१४।

अनुवाद—"(चारित्रमोह का क्षपण करनेवाला जीव) स्त्रीवेद और नपुंसक वेद का नियम से पुरुषवेद में संक्रमण करता है। तथा पुरुषवेद और हास्यादि छह, इन सात नोकषायों का नियम से संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है।"

इन गाथाओं से सूचित होता है कि कसायपाहुड में कर्मभूमि के प्रत्येक मनुष्य और संज्ञी तिर्यंच में स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इन तीनों वेद-नोकषायों की सत्ता स्वीकार की गई है। यह यापनीयमत के विरुद्ध है, क्योंकि वह प्रत्येक जीव में एक ही वेदसामान्य का अस्तित्व मानता है, वही स्त्री में स्त्रीवेद के रूप में, पुरुष में पुरुषवेद के रूप में तथा नपुंसक में नपुंसकवेद के रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार यापनीयमत में वेदकषाय एक ही प्रकार की मानी गई है। अतः उसके अनुसार कषायें पच्चीस न होकर तेईस ही हैं। इसका स्पष्टीकरण षट्खण्डागम के अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है। कसायपाहुड में इस यापनीयमतविरोधी वेदत्रय के सिद्धान्त की उपलब्धि सिद्ध करती है कि वह यापनीयग्रन्थ नहीं है।

वेदत्रय का अस्तित्व वेदवैषम्य की आधारशिला है। दिगम्बरीय और श्वेताम्बरीय शास्त्र इसके प्रमाण हैं। अतः कसायपाहुड में वेदत्रय की स्वीकृति से वेदवैषम्य भी स्वीकार किया गया है। किन्तु यापनीयमत में वेदवैषम्य के लिए स्थान नहीं है, क्योंकि वहाँ प्रत्येक जीव में एक ही प्रकार के भाववेद का अस्तित्व माना गया है। इस कारण भी कसायपाहुड यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादक है।

१.२. गुणस्थान सिद्धान्त की उपलब्धि

कसायपाहुड में गुणस्थानों का भी निर्देश मिलता है। **संक्रम अर्थाधिकार** (क.पा./भा.८)की निम्न-लिखित गाथाओं में प्रकृतिसंक्रमस्थान के स्वामित्व का वर्णन गुणस्थानानुसार किया गया है—

सत्तारसेगवीसासु संकमो णियम पंचवीसाए।
णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे॥ ३०॥

अनुवाद—"सत्तरह और इक्कीस-प्रकृतिक दो प्रतिग्रहस्थानों में पच्चीस-प्रकृतिक स्थान का नियम से संक्रमण होता है। यह पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नियम से चारों ही गतियों में होता है। तथा दृष्टिगत अर्थात् 'दृष्टि' पद जिनके अन्त में है, उन मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, तीनों गुणस्थानों में वह पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नियम से पाया जाता है।"

चोद्दसग दसग सत्तग अट्ठारसगे च णियम वावीसा।
णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य॥ ३२॥

अनुवाद—"बाईस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम नियम से चौदह, दस, सात और अट्ठारह-प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थानों में होता है। यह नियम से मनुष्यगति में ही होता है। तथा वह संयत, संयतासंयत (मिश्र) और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में होता है।"

तेरसय णवय सत्तय सत्तारस पणय एक्कवीसाए।
एगाधिगाए वीसाए संकमो छप्पि सम्मत्ते॥ ३३॥

अनुवाद—"इक्कीस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम तेरह, नौ, सात, सत्तरह, पाँच और इक्कीस-प्रकृतिक छह प्रतिग्रहस्थानों में होता है। ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्व से युक्त गुणस्थानों में होते हैं।"

एत्तो अवसेसा संजमम्हि उवसामगे च खवगे च।
वीसा य संकमदुगे छक्के पणगे च बोद्धव्वा॥ ३४॥

अनुवाद—"शेष संक्रम और प्रतिग्रहस्थान उपशमक और क्षपक संयत के ही होते हैं। बीस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम छह और पाँच-प्रकृतिक दो प्रतिग्रहस्थानों में जानना चाहिए।"

चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्ते मिस्सगे य सम्मत्ते।
बावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य॥ ४३॥

अनुवाद—मिथ्यात्व गुणस्थान में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस और तेईस-प्रकृतिक चार संक्रमस्थान होते हैं। मिश्रगुणस्थान में पच्चीस और इक्कीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं। सम्यक्त्वयुक्त गुणस्थानों में तेईस संक्रमस्थान होते हैं। संयमयुक्त प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानों में बाईस संक्रमस्थान होते हैं। मिश्र अर्थात् संयतासंयत गुणस्थान में सत्ताईस, छब्बीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं। अविरतगुणस्थान में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक छह संक्रमस्थान होते हैं।"

इसके अतिरिक्त बादरसाम्पराय ('चरिमो बादररागो'/ गा.२०९/ क.पा./भा.१६), सूक्ष्मसाम्पराय ('**सुहुमम्हि सांपराए**'/ गा.२१७/क.पा./भा.१६), छद्मस्थवीतराग आदि गुणस्थानों से सम्बन्धित विविध निरूपण किये गये हैं। मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि की प्रवृत्तियों और विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। **अपगतवेदत्व** गुणस्थानसिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण अंग है। उसका निरूपण '**अवगयवेद-णवुंसय**' इत्यादि गाथा (४५/क.पा./भा.८) में किया गया है।

चतुर्दशगुणस्थानों से सम्बन्धित यह सूक्ष्म एवं विस्तृत निरूपण दिगम्बरग्रन्थ का लक्षण है और श्वेताम्बर तथा यापनीय परम्पराओं के ग्रन्थों का प्रतिलक्षण, क्योंकि इससे यापनीयों और श्वेताम्बरों को मान्य गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं शुभाशुभोपयोगप्रवृत्त-स्त्रीपुरुषों की मुक्ति के सिद्धान्तों का विरोध होता है। षट्खण्डागम के अध्याय में इस तथ्य पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। गुणस्थानसिद्धान्त श्वेताम्बर और

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यापनीय परम्पराओं में मान्य नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि इसका प्रतिपादक कसायपाहुड इन दोनों परम्पराओं या इनकी मातृपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है।

१.३. शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध

श्वेताम्बर और यापनीय परम्पराओं का कोई भी ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत में नहीं रचा गया। श्वेताम्बरग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत है। तथा यापनीय-परम्परा का प्राकृतभाषा में निबद्ध कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। उसके जो **स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण** आदि तीन-चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे सभी संस्कृत में हैं। कुछ विद्वानों ने शौरसेनी में रचित **भगवती-आराधना** और **मूलाचार** को, तथा 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने **तिलोयपण्णत्ती** आदि कुछ अन्य ग्रन्थों को भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ बतलाया है, किन्तु वे दिगम्बरग्रन्थ ही हैं, इसके प्रमाण उत्तर अध्यायों में द्रष्टव्य हैं। उक्त ग्रन्थ के लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि "श्वेताम्बर-परम्परा में कोई भी शौरसेनीप्राकृत की रचना उपलब्ध नहीं है। अतः कसायपाहुड के वर्तमान स्वरूप को श्वेताम्बर-परम्परा की रचना तो नहीं कहा जा सकता, जैसा कि कल्याणविजय जी ने माना है।" (जै.ध.या.स./पृ.८५)।

तथापि उक्त ग्रन्थ के मान्य लेखक ने यह माना है कि कसायपाहुड मूलतः अर्धमागधी में था। उसके चूर्णिसूत्रकार यापनीय यतिवृषभ ने उसे शौरसेनी में रूपान्तरित कर दिया। किन्तु उन्होंने न तो इस बात का कोई प्रमाण प्रस्तुत किया है कि आचार्य यतिवृषभ यापनीय थे, न ही इस बात का कि उन्होंने कसायपाहुड का शौरसेनी में रूपान्तरण किया था। अतः ये दोनों बातें कपोलकल्पित हैं। इन्हीं यतिवृषभाचार्य ने **तिलोयपण्णत्ती** ग्रन्थ की रचना की है। उसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि का निषेध किया है, जो यापनीयमत की आधारभूत मान्यताएँ हैं। इसके प्रमाण **तिलोयपण्णत्ती** नामक सप्तदश अध्याय में दर्शनीय हैं। अतः इस प्रमाण से आचार्य यतिवृषभ दिगम्बराचार्य ही सिद्ध होते हैं। इसलिए उनके द्वारा किसी श्वेताम्बरीय अर्धमागधी ग्रन्थ का शौरसेनी में रूपान्तरित किये जाने का कोई प्रयोजन ही दृष्टिगोचर नहीं होता। इससे सिद्ध है कि कसायपाहुड दिगम्बर-परम्परा का ही ग्रन्थ है।

२
बहिरंग प्रमाण

निम्नलिखित बहिरंग प्रमाण भी सिद्ध करते हैं कि कसायपाहुड दिगम्बराचार्य द्वारा ही रचित है, अन्य किसी भी परम्परा के आचार्य द्वारा नहीं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२.१. कसायपाहुड ईसापूर्व द्वितीय शती के उत्तरार्ध में रचित

यापनीयपक्षी उक्त ग्रन्थलेखक ने स्वकल्पित गुणस्थान-विकासवाद के आधार पर कसायपाहुड का रचनाकाल तीसरी-चौथी शती ई० परिकल्पित किया है। किन्तु पूर्व में गुणस्थानविकासवाद की कपोलकल्पितता सप्रमाण सिद्ध की जा चुकी है, अतः उसके आधार पर किया गया उक्त निर्णय भी मिथ्या है। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ज्योतिषाचार्य ने दिगम्बरजैन-साहित्य में उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर आचार्य गुणधर का काल विक्रमपूर्व प्रथम शताब्दी अर्थात् ईसापूर्व द्वितीय शती का उत्तरार्ध निर्धारित किया है, जो सब दृष्टियों से समीचीन प्रतीत होता है। वे लिखते हैं—

"आचार्य गुणधर के समय के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि इनका समय धरसेन के पूर्व है। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार में लोहार्य तक की गुरुपरम्परा के पश्चात् विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त इन चार आचार्यों का उल्लेख किया गया है। ये सभी आचार्य अंगों और पूर्वों के एकदेशज्ञाता थे। इनके पश्चात् अर्हद्बलि का नाम आया है। अर्हद्बलि बड़े भारी संघनायक थे। इन्हें पूर्वदेश के पुण्ड्रवर्धनपुर का निवासी कहा गया है। इन्होंने पञ्चवर्षीय युगप्रतिक्रमण के समय बड़ा भारी एक यति-सम्मेलन किया, जिसमें सौ योजन तक के यति सम्मिलित हुए। इन यतियों की भावनाओं से अर्हद्बलि ने ज्ञात किया कि अब पक्षपात का समय आ गया है। अत एव इन्होंने नन्दि, वीर, अपराजित, देव, पञ्चस्तूप, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, सिंह, चन्द्र आदि नामों से भिन्न-भिन्न संघ स्थापित किये, जिससे परस्पर में धर्मवात्सल्यभाव वृद्धिंगत हो सके।

"संघ के उक्त नामों से यह स्पष्ट होता है कि गुणधरसंघ आचार्य गुणधर के नाम पर ही था। अतः गुणधर का समय अर्हद्बलि के समकालीन या उनसे भी पूर्व होना चाहिए। इन्द्रनन्दि को गुणधर और धरसेन का पूर्व या उत्तरवर्त्तित्व ज्ञात नहीं है। अत एव उन्होंने स्वयं अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए **श्रुतावतार** में लिखा है—

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात्॥ १५१॥

"अर्थात् गुणधर और धरसेन की पूर्वापर गुरुपरम्परा हमें ज्ञात नहीं है, क्योंकि इसका वृत्तान्त न तो हमें किसी आगम में मिला और न किसी मुनि ने ही बतलाया।

"स्पष्ट है कि इन्द्रनन्दि के समय तक आचार्य गुणधर और धरसेन का पूर्वापरवर्त्तित्व स्मृति के गर्भ में विलीन हो चुका था। पर इतना स्पष्ट है कि अर्हद्बलि द्वारा स्थापित संघों में गुणधरसंघ का नाम आया है। नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली में अर्हद्बलि का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

समय वीर निर्वाण सं० ५६५ अथवा वि० सं० ९५ है। यह स्पष्ट है कि गुणधर अर्हद्बलि के पूर्ववर्त्ती हैं, पर कितने पूर्ववर्ती हैं, यह निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। यदि गुणधर की परम्परा को ख्याति प्राप्त करने में सौ वर्ष का समय मान लिया जाय, तो 'छक्खंडागम'-प्रवचनकर्त्ता धरसेनाचार्य से 'कसायपाहुड' के प्रणेता गुणधराचार्य का समय लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार आचार्य गुणधर का समय वि० पू० प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

"हमारा यह अनुमान केवल कल्पना पर आधृत नहीं है। अर्हद्बलि के समय तक गुणधर के इतने अनुयायी यति हो चुके थे कि उनके नाम पर उन्हें संघ की स्थापना करनी पड़ी। अत एव अर्हद्बलि को अन्य संघों के समान गुणधरसंघ को भी मान्यता देनी पड़ी। प्रसिद्धि प्राप्त करने और अनुयायी बनाने में कम से कम सौ वर्ष का समय तो लग ही सकता है। अत: गुणधर का समय धरसेन से कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व अवश्य होना चाहिये।

"इनके गुरु आदि के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। गुणधर ने इस ग्रन्थ की रचना कर आचार्य नागहस्ति और आर्यमंक्षु को इसका व्याख्यान किया था। अत एव इनका समय उक्त आचार्यों से पूर्व है। **छक्खंडागम के सूत्रों के अध्ययन से भी यह अवगत होता है कि 'पेज्जदोसपाहुड' का प्रभाव इसके सूत्रों पर है।** भाषा की दृष्टि से छक्खंडागम की भाषा कसायपाहुड की भाषा की अपेक्षा अर्वाचीन है। अत: गुणधर का समय वि० पू० प्रथम शताब्दी मानना सर्वथा उचित है। जयधवलाकार ने लिखा है—

"**पुणो ताओ चेव सुत्तगाहाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ अज्जमंखुणागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।**"(ज.ध./क.पा./भा.१/गा.१/अनु.६८/पृ.७९-८०)।

"अर्थात् गुणधराचार्य के द्वारा १८० गाथाओं में कसायपाहुड का उपसंहार कर दिये जाने पर वे ही सूत्रगाथाएँ आचार्यपरम्परा से आती हुईं आर्यमंक्षु और नागहस्ती को प्राप्त हुईं। पश्चात् उन दोनों ही आचार्यों के पादमूल में बैठकर गुणधराचार्य के मुखकमल से निकली हुईं उन १८० गाथाओं के अर्थ को भले प्रकार से श्रवण करके प्रवचनवात्सल्य से प्रेरित हो यतिवृषभ भट्टारक ने उन पर चूर्णिसूत्रों की रचना की। इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि आचार्य गुणधर ने महान् विषय को संक्षेप में प्रस्तुत कर सूत्रप्रणाली का प्रवर्त्तन किया। गुणधर दिगम्बरपरम्परा के सबसे पहले सूत्रकार हैं।" (ती.म.आ.प./ खं.२/पृ.२९-३१)।

इससे सिद्ध है कि कसायपाहुड की रचना श्वेताम्बर स्थविरावलियों में उल्लिखित आर्यमंक्षु और नागहस्ती से भी पूर्व हुई थी। और यापनीयसम्प्रदाय का जन्म तो उसके लगभग ५५० वर्ष बाद हुआ था। अतः उत्पत्तिकाल की पूर्वापरता से भी सिद्ध होता है कि कसायपाहुड की रचना न यापनीयपरम्परा में हुई है, न श्वेताम्बरपरम्परा में, न इन दोनों की मनःकल्पित मातृपरम्परा में। उसकी रचना **दिगम्बराचार्य** गुणधर ने की है।

२.२. अन्य बहिरंग तथ्य

नीचे उल्लिखित तथ्यों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि कसायपाहुड दिगम्बर-ग्रन्थ है—

१. कसायपाहुड के कर्त्ता गुणधर और चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ के नाम श्वेताम्बर-यापनीय-स्थविरावलियों में नहीं मिलते।

२. श्वेताम्बर-यापनीय-साहित्य में में भी गुणधर तथा उनके द्वारा कसायपाहुड की रचना, आर्यमंक्षु और नागहस्ती द्वारा आचार्यपरम्परा से उसके ज्ञान की प्राप्ति, तथा इन दोनों के चरणकमलों में बैठकर यतिवृषभ द्वारा कसायपाहुड के अर्थश्रवण एवं चूर्णिसूत्र लिखे जाने का कोई विवरण नहीं है, जबकि दिगम्बरसाहित्य में है।

३. दिगम्बरसाहित्य में अर्हद्बलि द्वारा गुणधर के नाम से एक गुणधरसंघ बनाये जाने का भी उल्लेख है।

४. जिन आर्यमंक्षु और नागहस्ती को आचार्यपरम्परा से कसायपाहुड की गाथाएँ प्राप्त होने का कथन जयधवलाकार ने किया है, वे श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में निर्दिष्ट आर्यमंक्षु और नागहस्ती से भिन्न थे।

५. यह ग्रन्थ, परम्परा से दिगम्बरजैन आम्नाय में ही प्राचीन दिगम्बर-आगम के रूप में मान्य और प्रचलित है, श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों में नहीं।

६. दिगम्बर शास्त्रभण्डारों में ही यह आज तक सुरक्षित चला आ रहा है, श्वेताम्बर और यापनीय भंडारों में इसका कभी अस्तित्व नहीं रहा।

७. दिगम्बराचार्यों ने ही इस पर चूर्णिसूत्र और टीकाएँ लिखी हैं, श्वेताम्बर और यापनीय आचार्यों ने नहीं। श्वेताम्बरसाहित्य में आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि आदि के समान कसायपाहुडचूर्णि उपलब्ध नहीं है। यदि यह श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ होता, तो इस पर किसी श्वेताम्बराचार्य द्वारा चूर्णि, निर्युक्ति, भाष्य या वृत्ति अवश्य लिखी जाती।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उपर्युक्त अन्तरंग एवं बहिरंग प्रमाणों से सिद्ध है कि कसायपाहुड न श्वेताम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है, न यापनीयपरम्परा का, न इन दोनों की काल्पनिक मातृपरम्परा का। यह तो सवस्त्रमुक्तिविरोधी एवं स्त्रीमुक्तिविरोधी दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है। इसके रचयिता गुणधर दिगम्बराचार्य थे और चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ भी दिगम्बराचार्य थे।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तृतीय प्रकरण

प्रतिपक्षी हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता

यद्यपि पूर्वोक्त अन्तरंग एवं बहिरंग प्रमाणों से कसायपाहुड के दिगम्बरग्रन्थ होने में कोई सन्देह नहीं रहता, फिर भी उसके यापनीयग्रन्थ होने का सन्देह उत्पन्न करनेवाले जो हेतु प्रस्तुत किये गये हैं, उनकी असत्यता एवं हेत्वाभासता का उद्घाटन आवश्यक है, जिससे उसके दिगम्बरग्रन्थ होने में सन्देह के लिए रंचमात्र भी स्थान न रहे। अतः प्रस्तुत प्रकरण में यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता का प्रकाशन किया जा रहा है।

१

श्वेताम्बर-यापनीय स्थविरावलियों में गुणधर का नाम नहीं

यापनीयपक्ष

'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक डॉ० सागरमल जी इस ग्रन्थ में लिखते हैं—''कसायपाहुड के कर्त्ता के रूप में गुणधर का और चूर्णिकार के रूप में यतिवृषभ का उल्लेख सर्वप्रथम जयधवलाकार ने किया है। आचार्य गुणधर कौन थे और किस परम्परा के थे, इसकी सूचना हमें न प्राचीन श्वेताम्बर आगमिक स्थविरावलियों से और न ही दिगम्बर-पट्टावलियों से प्राप्त होती है। जयधवला में भी मात्र यही कहा गया है कि आचार्यपरम्परा से आती हुई सूत्रगाथाएँ आर्यमंक्षु और नागहस्ती को प्राप्त हुईं, पुनः उन दोनों के पादमूल में बैठकर गुणधर आचार्य के मुखकमल से निकली हुईं उन १८० गाथाओं के अर्थ को सम्यक् प्रकार से श्रवण कर यतिवृषभ भट्टारक ने प्रवचनवात्सल्य के लिए चूर्णिसूत्रों की रचना की।'' (जै.ध.या.स./पृ.८२-८३)। वे आगे कहते हैं—

क—''प्राचीन दिगम्बर-पट्टावलियों में गुणधर, आर्यमंक्षु और नागहस्ती का, जो कि इसके कर्त्ता या प्रणेता माने जाते हैं, उल्लेख नहीं होने से और श्वेताम्बर-पट्टावलियों में इनका उल्लेख होने से यह सिद्ध होता है कि यह मूलतः दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है।'' (जै.ध.या.स./पृ.८६-८७)।

ख—''कल्पसूत्र, नन्दीसूत्र आदि में तथा मथुरा के शिलालेखों में आर्यमंक्षु और आर्य नागहस्ती का उल्लेख होने से एवं आर्य नागहस्ती को कर्मशास्त्र का ज्ञाता कहे जाने से यह सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ उस परम्परा में निर्मित हुआ है, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों की पूर्वज थी।'' (जै.ध.या.स./पृ.८७)।

ग—"इतना निश्चित है कि आर्यमंक्षु और आर्य नागहस्ती न तो दिगम्बर आचार्य हैं और न यापनीय ही। यद्यपि इतना भी निश्चित है कि वे श्वेताम्बरों के समान यापनीयों के भी पूर्वज हैं।" (जै.ध.या.स./पृ.८७)।

दिगम्बरपक्ष

कसायपाहुड के कर्त्ता आचार्य गुणधर हैं, आर्यमंक्षु और नागहस्ती नहीं। इन्होंने तो कसायपाहुड का ज्ञान आचार्यपरम्परा से प्राप्त किया था। कसायपाहुड के कर्त्ता गुणधर का नाम श्वेताम्बरों और यापनीयों की स्थविरावलियों में नहीं मिलता। ऊपर उद्धृत वचनों में मान्य लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि "आचार्य गुणधर कौन थे और किस परम्परा के थे, इसकी सूचना हमें न प्राचीन आगमिक श्वेताम्बर स्थविरावलियों से मिलती है और न दिगम्बर-पट्टावलियों से।" आगे जो उन्होंने आर्यमंक्षु और नागहस्ती के साथ गुणधर के नाम का भी उल्लेख श्वेताम्बर-पट्टावलियों में बतला दिया है, वह उनके उक्त वचनों से असत्य सिद्ध हो जाता है। अतः गुणधर को दिगम्बरेतर परम्परा का सिद्ध करने के लिए बतलाया गया यह हेतु कि उनका श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में नाम है, असत्य है। इस प्रकार असत्य हेतु का प्रयोग कर कसायपाहुड को दिगम्बरेतर परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। श्वेताम्बर और यापनीय-स्थविरावलियों में गुणधर का नाम उपलब्ध न होने से सिद्ध है कि उनका सम्बन्ध न तो श्वेताम्बरपरम्परा से था, न यापनीयपरम्परा से, न इन दोनों की मनःकल्पित मातृपरम्परा से।

२

श्वेताम्बर-यापनीय साहित्य में गुणधर का नाम अनुपलब्ध

श्वेताम्बर और यापनीय परम्पराओं के किसी भी ग्रन्थ में आचार्य गुणधर का नाम नहीं आया है, न ही इस बात की चर्चा है कि गुणधर कसायपाहुड के कर्त्ता हैं। सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी लिखा है—"श्वेताम्बरपरम्परा में न तो गुणधराचार्य का नामोनिशां मिलता है और न यतिवृषभ का।" (जै.सा.इ./भा.१/पृ.१७)।

इसके विपरीत दिगम्बरपरम्परा में **जयधवलाटीका** तथा **इन्द्रनन्दी** एवं **विबुध-श्रीधर** के **श्रुतावतारों** में स्पष्ट कहा गया है कि आचार्य गुणधर ने कसायपाहुड के गाथासूत्रों की रचना की थी। जयधवलाकार श्री वीरसेन स्वामी ग्रन्थ (ज.ध./क.पा./भा.१) के आरम्भ में मंगलाचरण करते हुए कहते हैं—

जेणिह कसायपाहुडमणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं।
गाहाहि विवरियं तं गुणहरभडारयं वंदे॥ ६॥

अनुवाद—"जिन्होंने इस आर्यावर्त में अनेक नयों से उज्ज्वल और अनन्तपदार्थों से व्याप्त कसायपाहुड का गाथाओं द्वारा व्याख्यान किया, उन गुणधर-भट्टारक को मैं (आचार्य वीरसेन) नमस्कार करता हूँ।"

आचार्य इन्द्रनन्दी (१०वीं शती ई०) भी **श्रुतावतार** में लिखते हैं—

अथ गुणधरमुनिनाथः सकषायप्राभृतान्वयं तत्प्रायो-
दोषप्राभृतकापरसंज्ञां साम्प्रतिकशक्तिमपेक्ष्य॥ १५२॥

त्र्यधिकाशीत्या युक्तं शतं च मूलसूत्रगाथानाम्।
विवरणगाथानां च त्र्यधिकं पञ्चाशतकमकार्षीत्॥ १५३॥

अनुवाद—"तदनन्तर गुणधर मुनिनाथ ने अपनी वर्तमान शक्ति को देखकर **कषायप्राभृत** अपरनाम **प्रायोदोषप्राभृत** (पेज्जदोसपाहुड) की रचना की, जिसमें १८३ गाथासूत्र और ५३ विवरण गाथाएँ हैं।"

विबुधश्रीधर ने भी 'श्रुतावतार' में लिखा है—"**ज्ञानप्रवादपूर्वस्य नाम त्रयोदशमो वस्तुकस्तदीयतृतीयप्राभृतवेत्ता गुणधरनामगणी मुनिर्भविष्यति। सोऽपि नागहस्तमुनेः पुरतस्तेषां सूत्राणामर्थान् प्रतिपादयिष्यति। तयोर्गुणधरनागहस्तिनामभट्टारकयोरुपकण्ठे पठित्वा तानि सूत्राणि यतिनायकाभिधो मुनिस्तेषां गाथासूत्राणां वृत्तिरूपेण षट्सह-स्रप्रमाणं चूर्णिनामशास्त्रं करिष्यति।**" (सिद्धान्तसारादिसंग्रह / पृ.३१७)।

अनुवाद—"ज्ञानप्रवादपूर्व की तेरहवीं वस्तु के तृतीयप्राभृत के वेत्ता गुणधर नाम के गणी मुनि होंगे। वे भी नागहस्तिमुनि के समक्ष उन सूत्रों के अर्थ का प्रतिपादन करेंगे। उन गुणधर और नागहस्ती भट्टारकों के समीप उक्त सूत्रों का पठन कर यतिनायक (यतिवृषभ) नाम के मुनि उन गाथासूत्रों की वृत्ति के रूप में छह हजार सूत्रोंवाले **चूर्णि** नामक शास्त्र की रचना करेंगे।"

इन्द्रनन्दिकृत **श्रुतावतार** में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि आचार्य अर्हद्बलि ने अनेक संघों की स्थापना की थी, उनमें एक गुणधरसंघ भी था, जिसका नाम संभवतः उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्य गुणधर की स्मृति में रखा था—

ये शाल्मली-महाद्रुम-मूलाद्यतयोऽभ्युपगतास्तेषु।
कांश्चिद् गुणधरसंज्ञकान्कांश्चिद् गुप्ताह्वयानकरोत्॥ ९४॥

इस प्रकार श्वेताम्बरसाहित्य में कसायपाहुड के कर्त्ता के रूप में आचार्य गुणधर का कोई उल्लेख न होना और दिगम्बरसाहित्य में उल्लेख मिलना, इस बात का प्रमाण है कि उनका सम्बन्ध न तो श्वेताम्बर-परम्परा से था, न यापनीय-परम्परा से और न इन दोनों की मनःकल्पित मातृपरम्परा से, अपितु दिगम्बर-परम्परा से था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

'गुणधर' के स्थान में 'गणधर' की कल्पना अप्रामाणिक

यापनीयपक्ष

किन्तु उक्त यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक ने दिगम्बरपरम्परा में गुणधर के अस्तित्व को झुठलाने के लिए **गुणधर** नाम को विवादास्पद बनाने का प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं—"यद्यपि यह माना जाता है कि आचार्य गुणधर आर्यमंक्षु के पूर्व हुए थे, किन्तु दिगम्बरपरम्परा में गुणधर-नामक किसी आचार्य का अस्तित्व ही विवादास्पद है। क्योंकि उनके सम्बन्ध में दसवीं शती के जयधवला के इस उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। वैसे जयधवला में जो यह कहा गया है कि गुणधर के मुखकमल से निकली ये गाथाएँ आर्यमंक्षु और नागहस्ती के द्वारा अवधारण की गईं, इससे फलित होता है कि वस्तुतः मूल में गणधर (गणहर) ही होगा और आगे चलकर भ्रान्तिवश उसे गुणधर मान लिया गया होगा।" (जै.ध.या.स./पृ.८४-८५)।

दिगम्बरपक्ष

मान्य ग्रन्थलेखक के कथन का अभिप्राय यह है कि वीरसेन स्वामी ने जयधवला में कसायपाहुड की गाथाओं को गणधर के ही मुख से निर्गत बतलाया होगा, किन्तु आगे चलकर किसी ने गणधर के स्थान में गुणधर कर दिया होगा। किन्तु इसके समर्थन में उन्होंने कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया। उन्होंने जयधवला की एक भी ऐसी प्रति नहीं बतलायी, जिसमें 'गुणधर' के स्थान में 'गणधर' का उल्लेख हो। इससे सिद्ध है कि यह उनके अपने मन की कल्पना है, प्रमाणसिद्ध तथ्य नहीं।

इसके अतिरिक्त मान्य ग्रन्थलेखक ने **मुखकमल से निकली** इन शब्दों के प्रयोग के आधार पर भी यह निष्कर्ष निकाला है कि मूल में गणधर शब्द रहा होगा। उनकी इस सूझ से मैं चकित हूँ। आज तक ऐसा कोई शास्त्र मेरे देखने में नहीं आया, जिसमें यह नियम निर्धारित किया गया हो कि 'मुखकमल से निकली हुई' इस शब्दावली का प्रयोग केवल गणधर के साथ ही किया जा सकता है, अन्य व्यक्ति के साथ नहीं। यह तो किसी भी आदरणीय व्यक्ति के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त की जानेवाली लोकप्रसिद्ध रूपकालंकारमय शब्दावली है। इससे यह सिद्ध कैसे हो सकता है कि यहाँ मूलतः 'गणधर' शब्द रहा होगा? मान्य ग्रन्थलेखक का यह कथन अपढ़ व्यक्ति के भी गले नहीं उतर सकता।

अपने टीकाग्रन्थ के आरंभ में वीरसेन स्वामी ने क्रमशः चन्द्रप्रभ जिनदेव, चौबीस तीर्थंकर, वीरभगवान्, श्रुतदेवी, गणधरदेव और गुणधर आचार्य की स्तुति की है। गणधरदेव

को श्रुतज्ञान का सागर और गुणधर को कसायप्राभृत का गाथाओं द्वारा व्याख्यान करनेवाला कहा है। इससे स्पष्ट है कि आगे जयधवला (क.पा./भा.१) की ७वीं मंगलगाथा में जो यह कहा गया है कि गुणधर के मुख से निकली हुई गाथाओं के अर्थ का अवधारण आर्यमंक्षु और नागहस्ती ने किया, वह गुणधर से ही सम्बन्धित है। यहाँ गणधर और गुणधर के ज्ञान में महान् अन्तर बतलाया गया है। गणधर को श्रुतज्ञान का सागर बतलाया गया है और गुणधर को केवल कषायप्राभृत का ज्ञाता। तथा गणधर को पहले नमस्कार किया गया है, गुणधर को बाद में। यदि गुणधर के स्थान में भी गणधर शब्द ही माना जाय तो गणधर को नमस्कार की पुनरावृत्ति का प्रसंग आयेगा, जबकि उसके पूर्व किसी को भी नमस्कार की पुनरावृत्ति नहीं की गई है। इससे सिद्ध है कि मान्य ग्रन्थलेखक ने जो गुणधर के स्थान में 'गणधर' होने की कल्पना की है, वह निराधार है। आचार्य वीरसेन ने वहाँ कसायपाहुड के कर्त्ता गुणधर को ही प्रणाम किया है। ऐसे प्रयोग उन्होंने और भी कई जगह किये हैं। यथा—

"तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरंपराए आगंतूण **गुणहराइरियं** संपत्तो। पुणो तेण **गुणहरभडारएण** णाणपवादपंचमपुव्व-दसमवत्थु-तदियकसायपाहुड-महण्णवपारएण गंथवोच्छेदभएण पवयणवच्छल-परवसीकयहियएण एदं पेज्जदोसपाहुडं सोलस-पद-सहस्स-पमाणं होंतं असीदि-सदमेत्त-गाहाहि उवसंघारिदं। पुणो ताओ चेव सुत्तगाहाओ आइरिय-परंपराए आगच्छमाणीओ अज्जमुंखणागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसद-गाहाणं **गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं** सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।" (ज.ध./क.पा./भा.१/गा.१/अनु.६८/पृ.७९-८०)।

अनुवाद—उसके पश्चात् अंगों और पूर्वों का एकदेश ही आचार्यपरम्परा से आकर गुणधर आचार्य को प्राप्त हुआ। पुनः ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व की दसवीं वस्तु-सम्बन्धी तीसरे कषायप्राभृतरूपी महासमुद्र के पार को प्राप्त श्री गुणधर भट्टारक ने, जिनका हृदय प्रवचन के वात्सल्य से भरा हुआ था, सोलह हजार पदप्रमाण इस पेज्जदोसपाहुड का, ग्रन्थ-विच्छेद के भय से, केवल एक सौ अस्सी गाथाओं के द्वारा उपसंहार किया। पुनः वे ही सूत्रगाथाएँ आचार्यपरम्परा से आती हुईं आर्यमंक्षु और नागहस्ती को प्राप्त हुईं। पुनः उन दोनों आचार्यों के पादमूल में बैठकर गुणधर आचार्य के मुखकमल से निकली हुईं उन एक सौ अस्सी गाथाओं के अर्थ को भली प्रकार श्रवण करके प्रवचनवत्सल यतिवृषभ भट्टारक ने उन पर चूर्णिसूत्रों की रचना की।"

यहाँ पुनः '**गुणधर आचार्य के मुखकमल से निकली हुईं**' यह प्रयोग किया गया है। अब यदि यहाँ गुणधर के स्थान में गणधर माना जाय, तो प्रारंभिक वाक्य में जो यह कहा गया है कि "उसके पश्चात् अंगों और पूर्वों का एकदेश ही आचार्यपरम्परा

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

से आकर गुणधर आचार्य को प्राप्त हुआ'' यहाँ भी गुणधर के स्थान में गणधर मानना होगा, तब सम्पूर्ण कथन असंगत हो जायेगा, क्योंकि अंगों और पूर्वों का एकदेश आचार्यपरम्परा से गणधर को प्राप्त नहीं हुआ था, अपितु गणधर से आचार्यपरम्परा को प्राप्त हुआ था। गणधर को तो साक्षात् भगवान् महावीर से प्राप्त हुआ था और अंगों और पूर्वों का एकदेश नहीं, अपितु वे समग्रतः प्राप्त हुए थे। निम्नलिखित वाक्यों में भी वीरसेन स्वामी ने **गुणधर के मुखकमल से निकली हुईं** कहा है—

क—''**गुणहराइरियमुहकमलविणिग्गयसव्वगाहाणं** समासो तेत्तीसाहियविसदमेत्तो होदि २३३।'' (ज.ध./क.पा./भा.१/गा.११-१२/अनु.१४६/पृ.१६६)।

ख—''**गुणहरमुहविणिग्गयत्तादो।**'' (ज.ध./क.पा./भा.१/गा.१५/अनु.३३२/पृ.३३१)।

न केवल गुणधर के अपितु '**आर्यमंक्षु और नागहस्ती के मुखकमल से निकले हुए**' ऐसा प्रयोग भी वीरसेन स्वामी ने किया है। यथा—

ग—''**अज्जमंखु-णागहत्थि-महावाचय-मुहकमल-विणिग्गएण सम्मत्तस्स---।**'' (ज.ध./क.पा./भाग १३/गा.११४/अनु.७४/पृ.५४)।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि उक्त यापनीयपक्षी विद्वान् का यह कथन कि गणधर के स्थान में भूल से गुणधर मान लिया गया है, स्वयं उनकी ही भूल है। यदि वे जयधवला के केवल प्रथमभाग का ही ध्यान से अवलोकन करते, तो उनसे उनके अभिप्राय और प्रयत्न की गंभीरता को सन्देहास्पद बनानेवाली ऐसी खेदजनक भूल न हुई होती। सार यह कि दिगम्बर-परम्परा में आचार्य गुणधर के अस्तित्व को असत्य सिद्ध करने के लिए बतलाया गया उपर्युक्त हेतु स्वयं असत्य है। **असत्य हेतु गुणधर के अस्तित्व को असत्य सिद्ध नहीं कर सकता।**

तत्पश्चात् वे यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक श्वेताम्बरपरम्परा से किसी **गुणन्धर** को ढूँढ़ कर ले आते हैं और उनके कसायपाहुडकर्त्ता होने की संभावना पर विचार करने लगते हैं। (जै.ध.या.स./पृ.८५)। किन्तु कालसंगति न बैठने के कारण उन्हें कसायपाहुडका कर्त्ता घोषित करने का विचार त्याग देते हैं। और अन्त में यह नहीं बतला पाते कि उनके अनुसार कसायपाहुड का कर्त्ता कौन है?

४

श्वेताम्बर आर्यमंगु-नागहस्ती का कसायपाहुड से सम्बन्ध असंभव

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक ने उपर्युक्त असत्य हेतु के द्वारा गुणधर के अस्तित्व को झुठलाकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कसायपाहुड का सम्बन्ध केवल

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आर्यमंगु और नागहस्ती से है। अर्थात् प्रकारान्तर से उन्हें ही उसका कर्त्ता सिद्ध करना चाहा है। और चूँकि उन दोनों के नाम श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में उपलब्ध हैं और उपलब्ध कसायपाहुड अर्धमागधी प्राकृत में नहीं है, इसलिए मान्य ग्रन्थलेखक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ये दोनों आचार्य न श्वेताम्बर थे, न यापनीय, अपितु दोनों ही उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-मातृपरम्परा से सम्बद्ध थे। कसायपाहुड इसी परम्परा में रचा गया था। और इस परम्परा के विभाजित होने पर उत्तराधिकार में श्वेताम्बर और यापनीय दोनों सम्प्रदायों को प्राप्त हुआ था। उस समय वह अर्धमागधी में था, किन्तु यापनीय परम्परा में वह यतिवृषभ के द्वारा शौरसेनी में रूपान्तरित कर लिया गया। वर्तमान में उपलब्ध कसायपाहुड वही है। मान्य ग्रन्थलेखक अपने इन विचारों को प्रकट करते हुए लिखते हैं—

"वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ आर्यमंक्षु और नागहस्ती की उस अविभक्त परम्परा में निर्मित हुआ है, जिसका उत्तराधिकार समानरूप से यापनीयों को भी प्राप्त हुआ था। सम्भावना यही है कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती से अध्ययन करके यतिवृषभ ने ही इसे शौरसेनी प्राकृत का वर्तमानस्वरूप प्रदान कर चूर्णिसूत्र की रचना की हो।" (जै.ध.या.स./पृ.८५)।

"इससे यही सिद्ध होता है कि कसायपाहुड उत्तरभारत की अविभक्त निर्ग्रन्थपरम्परा (सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा) का ग्रन्थ है, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों को समानरूप से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था।" (जै.ध.या.स./पृ.८९)।

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि डॉ० सागरमल जी ने **आर्यमंगु** को **आर्यमंक्षु** शब्द से भी अभिहित किया है। वे लिखते हैं-"ज्ञातव्य है कि नन्दीसूत्र एवं माथुरीवाचना की स्थविरावली में आर्य मंक्षु (मंगु) आर्य नन्दिल और आर्य नागहस्ती (नागहत्थी) के उल्लेख हैं---।" (जै.ध.या.स./पृ.८३)।

दिगम्बरपक्ष

यह उक्त ग्रन्थलेखक के अपने मन की कल्पना है। यदि उपलब्ध कसायपाहुड अर्धमागधी में होता, तो वे इसे बड़ी सरलता से श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ घोषित कर देते। तब उन्हें न तो श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा के अस्तित्व की कल्पना करनी पड़ती, न आर्यमंक्षु और नागहस्ती को उस परम्परा से सम्बद्ध मानने की, न उस परम्परा में कसायपाहुड के रचे जाने की, न ही यतिवृषभ को यापनीय मानकर उनके द्वारा कसायपाहुड का शौरसेनीकरण किये जाने की। यह सारा प्रपञ्च उन्हें इसलिए रचना पड़ा कि कसायपाहुड शौरसेनी में है, अर्धमागधी में नहीं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु श्वेताम्बरसाहित्य में उपलब्ध प्रमाणों से आर्यमंक्षु और नागहस्ती का कसायपाहुड के साथ सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। क्योंकि भले ही श्वेताम्बर-परम्परा में आर्यमंगु और नागहस्ती के नाम उपलब्ध हैं, तथापि न तो वे परस्पर समकालीन सिद्ध होते हैं, न यतिवृषभ के साथ उनकी कालसंगति बैठती है, जिन्हें उन दोनों का साक्षात् शिष्य माना गया है, न श्वेताम्बरसाहित्य में इस बात का उल्लेख है कि आचार्य-परम्परा से उन्होंने कसायपाहुड का अर्थग्रहण किया था, न उस आचार्यपरम्परा का कोई पदचिह्न प्राप्त होता है, न उसमें यह संकेत है कि उन्होंने यतिवृषभ को उन गाथाओं की शिक्षा दी थी और न ही उनकी कर्मसिद्धान्त-विषयक किसी विचारधारा का श्वेताम्बर साहित्य में कहीं उल्लेख मिलता है। (पं.कै.च.शास्त्री : जै.सा.इ.भा.१/ पृ.१७)।

जयधवलाकार का कथन है कि यतिवृषभ ने आर्यमंक्षु और नागहस्ती दोनों के पादमूल में बैठकर गुणधरकथित गाथाओं के अर्थ का श्रवण किया था। इस कथन से इन तीनों आचार्यों की समकालीनता सिद्ध होती है। किन्तु श्वेताम्बर-स्थविरावलियों के अनुसार आर्यमंगु और नागहस्ती के बीच लगभग १५० वर्ष का अन्तर है। आर्य मंगु वी० नि० सं० ४५१ से ४७० तक अर्थात् ई० पू० ७६ से ई० पू० ५७ तक आचार्यपद पर आसीन रहे तथा आर्य नागहस्ती ने ईसोत्तर ९३ के आसपास आचार्यपद ग्रहण किया, जब कि दिगम्बरसाहित्य में उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार यतिवृषभ का समय १७६ ई० के लगभग है। (देखिये, अध्याय १०/ प्रकरण १-तिलोयपण्णत्ती का रचनाकाल)। अतः आर्यमंक्षु और यतिवृषभ के बीच २३३ वर्ष का तथा नागहस्ती और यतिवृषभ के मध्य लगभग ८३ वर्ष का अंतराल फलित होता है। इससे यह बात युक्तिसंगत सिद्ध नहीं होती कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती, दोनों के पादमूल में बैठकर यतिवृषभ ने कसायपाहुड की गाथाओं का श्रवण किया था।

तथा आचार्य गुणधर ई० पू० द्वितीय शती के उत्तरार्ध में हुए थे (देखिये, प्रकरण २/शीर्षक २.१) और श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में आर्यमंगु का आचार्यकाल ई० पू० ७६ से ई० पू० ५७ तक बतलाया गया है। इस प्रकार वे आचार्य गुणधर से लगभग एक शताब्दी बाद हुए थे। तथा श्वेताम्बर-स्थविरावलियों के अनुसार आर्य नागहस्ती का समय ईसोत्तर ९३ के आसपास है। इस तरह आर्य नागहस्ती आचार्य गुणधर से लगभग दो शताब्दियों के बाद उत्पन्न हुए थे। इस महान् कालवैषम्य के कारण इन दोनों का आचार्य गुणधर से कसायपाहुड की गाथाओं का श्रवण उपपन्न नहीं होता।

यदि थोड़ी देर के लिए गुणधर, आर्यमंक्षु, नागहस्ती और यतिवृषभ की कालसंगति भी मान ली जाय, तो भी यह सिद्ध नहीं होता कि श्वेताम्बरपरम्परा के आर्यमंगु और

नागहस्ती को गुणधर या अन्य किसी आचार्य से कसायपाहुड की गाथाएँ प्राप्त हुई थीं अथवा उन्होंने स्वयं रचीं थीं, क्योंकि यदि ऐसा होता, तो वे गाथाएँ आचार्यपरम्परा से श्वेताम्बरसम्प्रदाय में धरोहर के रूप में अवश्य सुरक्षित रहतीं, जैसे दिगम्बरपरम्परा में सुरक्षित हैं, और श्वेताम्बरसाहित्य में भी यह उल्लेख किया गया होता कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती को कसायपाहुड की गाथाएँ गुणधर या किसी अन्य आचार्य से साक्षात् या आचार्यपरम्परा द्वारा प्राप्त हुई थीं अथवा उन्होंने स्वयं उनकी रचना की थी। इतना ही नहीं आर्यमंक्षु और नागहस्ती के किसी मत या किसी अन्य कृति का भी उल्लेख श्वेताम्बरसाहित्य में नहीं मिलता। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री जयधवलासहित-कसायपाहुड की प्रस्तावना में लिखते हैं—

"इन दोनों आचार्यों का नाम नन्दिसूत्र की पट्टावली में अवश्य आता है और उसमें नागहस्ती को वाचकवंश का प्रस्थापक और कर्मप्रकृति का प्रधान विद्वान् भी कहा है। किन्तु इन दोनों आचार्यों के मन्तव्य का एक भी उल्लेख श्वेताम्बरपरम्परा के आगमिक या कर्मविषयक साहित्य में उपलब्ध नहीं होता, जबकि धवला और जयधवला में उनके मतों का उल्लेख बहुतायत से पाया जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः जयधवलाकार के सन्मुख इन दोनों आचार्यों की कोई कृति रही हो।" (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ. ६५)।

"इन दोनों आचार्यों के मतों का उल्लेख जयधवला में अनेक जगह आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जयधवलाकार के सामने इन दोनों आचार्यों की कोई कृति मौजूद थी या उन्हें गुरुपरम्परा से इन दोनों आचार्यों के मत प्राप्त हुए थे, क्योंकि ऐसा हुए बिना निश्चित रीति से अमुक-अमुक विषयों पर दोनों के जुदे-जुदे मतों का इस प्रकार उल्लेख करना संभव प्रतीत नहीं होता। इन दोनों में आर्यमंक्षु जेठे मालूम होते हैं, क्योंकि सब जगह उन्हीं का पहले उल्लेख किया गया है। किन्तु जेठे होने पर भी आर्यमंक्षु के उपदेश को **अपवाइज्जमाण**[३] और नागहस्ती के उपदेश को **पवाइज्जमाण** कहा है। जो उपदेश सर्वाचार्यसम्मत होता है और चिरकाल से अविच्छिन्न सम्प्रदाय के क्रम से चला आता हुआ शिष्यपरम्परा के द्वारा लाया जाता है, वह पवाइज्जमाण कहा जाता है। अर्थात् आर्यमंक्षु का उपदेश सर्वाचार्यसम्मत और अविच्छिन्न सम्प्रदायके क्रम से आया हुआ नहीं था, किन्तु नागहस्ती आचार्य का उपदेश सर्वाचार्यसम्मत और अविच्छिन्न सम्प्रदाय के क्रम से चला आया हुआ था। पश्चिमस्कन्ध में एक जगह

३. "सव्वाइरियसम्मदो चिरकालमव्वोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्सपरंपराए पवाइज्जदे पण्णविज्जदे सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे। अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम। णागहत्थिखवणाणमुवएसो पवाइज्जंतओ त्ति घेतव्वो।" जयधवला/ क. पा./ भा.१२/ अनु. १५३ / पृ.७१-७२।

इसी प्रकार दोनों आचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए जयधवलाकार ने लिखा है—

"**एत्थ दुवे उवएसा अत्थि त्ति, के वि भणंति। तं कधं? महावाचयाणमज्जमंखुखवणाणमुवदेसेण लोगे पूरिदे आउगसमं णामागोदवेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्मं ठवेदि। महावाचयाणं णागहत्थिखवणाणमुवएसेण लोगे पूरिदे णामागोदवेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तपमाणं होदि। होंतं पि आउगादो संखेज्जगुणमेत्तं ठवेदि त्ति। णवरि एसो वक्खाणसंपदाओ चुण्णिसुत्तविरुद्धो। चुण्णिसुत्ते मुत्तकंठमेव संखेज्जगुणमाउआदो त्ति णिद्दिट्ठत्तादो। तदो पवाइज्जंतोवएसो एसो चेव पहाणभावेणावलंबेयव्वो।**" (प्रे.का./पृ.७५८१)।

"अर्थात् इस विषय में दो उपदेश पाये जाते हैं। वे उपदेश इस प्रकार हैं: महावाचक आर्यमंक्षु क्षपण के उपदेश से लोकपूरण करने पर नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति को आयु के समान करता है। और महावाचक नागहस्ती क्षपण के उपदेश से लोकपूरण करने पर नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण करता है। अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण करने पर भी आयु से संख्यातगुणीमात्र करता है। इन दोनों उपदेशों में से पहला उपदेश चूर्णिसूत्र के विरुद्ध है, क्योंकि चूर्णिसूत्र में स्पष्ट ही **संखेज्जगुणमाउआदो** ऐसा कहा है। अतः दूसरा जो पवाइज्जंत उपदेश है, उसी का मुख्यता से अवलम्बन करना चाहिये। (क.पा./भाग १६/अनु.३४४/पृ.१५८)।

"यद्यपि सम्यक्त्व-अनुयोगद्वार में दोनों के ही उपदेशों को **पवाइज्जंत** कहा है। यथा—"**पवाइज्जंदेण पुण उवएसेण सव्वाइरियसम्मदेण अज्जमंखुणागहत्थिमहावाचयमुहकमलविणिग्गयेण सम्मत्तस्स अट्ठवस्साणि।**" (प्रे.पृ.६२६१)।

"किन्तु इसका कारण यह मालूम होता है कि यहाँ दोनों आचार्यों में मतभेद नहीं है। अर्थात् आर्यमंक्षु का भी वही मत है जो नागहस्ती का है। यदि आर्यमंक्षु का मत नागहस्ती के प्रतिकूल होता, तो यहाँ भी उसे अपवाइज्जंत ही कहा जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि जेठे होने पर भी आर्यमंक्षु की अपेक्षा प्रायः नागहस्ती का मत सर्वाचार्यसम्मत माना जाता था, कम से कम जयधवलाकार को तो यही इष्ट था। इन दोनों आचार्यों को भी जयधवलाकार ने महावाचक लिखा है और इन दोनों आचार्यों का भी उल्लेख धवला, जयधवला और श्रुतावतार के सिवाय उपलब्ध दिगम्बरसाहित्य में अन्यत्र नहीं पाया जाता है।" (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ.४१)।[४]

---

४. जयधवलासहित कसायपाहुड, भाग १ के '**सम्पादकीय वक्तव्य**' में पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने पृष्ठ (१४ ब) पर (जयधवलासहित कसायपाहुड) के '**कार्यविभाग की स्थूल**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पंडित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने 'जैन साहित्य का इतिहास' (भाग १/पृ.१७-१८) में भी इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने लिखा है—

"श्वेताम्बरपरम्परा में आर्यमंगु और नागहस्ती का विवरण एक-एक गाथा के द्वारा केवल नन्दिसूत्र की स्थविरावली में ही पाया जाता है। इनके किसी मत का या किसी कृति का कोई उल्लेख श्वेताम्बरसाहित्य में नहीं मिलता, जब कि जयधवला के देखने से यह प्रकट होता है कि टीकाकार वीरसेन स्वामी के सामने कोई ऐसी रचना अवश्य थी, जिसमें इन दोनों आचार्यों के मतों का स्पष्ट निर्देश था, क्योंकि यतिवृषभ ने अपने चूर्णिसूत्रों में **पवाइज्जमाण** उपदेश का निर्देश अवश्य किया है, किन्तु किसका उपदेश **पवाइज्जमाण** और किसका उपदेश **अपवाइज्जमाण** है, यह निर्देश नहीं किया। इसका स्पष्ट विवेचन किया है टीकाकार ने, अतः उनके सामने कोई उक्त प्रकार की रचना अवश्य होनी चाहिए।"

इस तरह श्वेताम्बरसाहित्य में आर्यमंक्षु और नागहस्ती की न तो किसी कृति का उल्लेख है, न किसी मत का, जब कि दिगम्बरसाहित्य में है। यह तथ्य इस बात का सबूत है कि श्वेताम्बर-स्थविरावली में उल्लिखित आर्यमंक्षु और नागहस्ती कसायपाहुड की गाथाओं से परिचित नहीं थे, कसायपाहुड से उनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं था।

अतः अन्यथानुपपत्ति से यही सिद्ध होता है कि जयधवलाकार ने जिन आर्यमंक्षु और नागहस्ती का उल्लेख किया है और यह कहा है कि उनके पादमूल में बैठकर यतिवृषभ ने गुणधरकथित गाथाओं के अर्थ का श्रवण किया था, वे श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में उल्लिखित आर्यमंक्षु और नागहस्ती से सर्वथा भिन्न थे। वे दिगम्बर-परम्परा में उत्पन्न हुए थे। अतः उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा के आर्यमंक्षु और नागहस्ती से यतिवृषभ ने गुणधरकथित गाथाओं का अर्थ श्रवण किया था, यह मान्यता, जो कसायपाहुड को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए हेतुरूप में प्रस्तुत की गयी है, असत्य है।

रूपरेखा' शीर्षक के नीचे लिखा है—"भूमिका के मुख्य तीन भाग हैं : ग्रन्थ, ग्रन्थकार और विषयपरिचय। इनमें से आदि के दो स्तम्भ पं. कैलाशचन्द्र जी ने लिखे हैं और अन्तिम स्तम्भ पं. महेन्द्रकुमार जी ने लिखा है।" यहाँ भूमिका से तात्पर्य 'प्रस्तावना' से है, क्योंकि 'प्रस्तावना' शीर्षक के अन्तर्गत ही, १. ग्रन्थपरिचय (पृष्ठ ५-३५), २. ग्रन्थकारपरिचय (पृ. ३६-७३) तथा ३. विषयपरिचय (पृष्ठ ७३-१०६) निबद्ध हैं। प्रस्तुत उद्धरण पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री द्वारा लिखित प्रस्तावना-भाग (पृष्ठ ६५ एवं ४१) से गृहीत हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५

यतिवृषभ का नाम यापनीय-आचार्यों की नामावली में नहीं

यापनीयपक्ष

कसायपाहुड शौरसेनी प्राकृत में है, अर्धमागधी में नहीं। यदि अर्धमागधी में होता, तो उक्त यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक उसे आसानी से श्वेताम्बरग्रन्थ घोषित कर देते। किन्तु शौरसेनी में होने से उसे यापनीयपरम्परा या उसकी कपोलकल्पित मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए उन्हें बहुत बड़ा प्रपञ्च रचना पड़ा। उसके निम्नलिखित अंग है—

१. 'गुणधर' शब्द को गलत बतलाकर 'गणधर' को सही कहना।

२. उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा के अस्तित्व की कल्पना करना।

३. आर्यमंक्षु और नागहस्ती को श्वेताम्बरपरम्परा से सम्बद्ध न बतलाकर उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से सम्बद्ध बतलाना और यह घोषित करना कि कसायपाहुड उनके द्वारा रचा गया है।

४. इस कपोलकल्पना को जन्म देना कि उक्त परम्परा से श्वेताम्बर और यापनीय दोनों को अर्धमागधी में रचित कसायपाहुड उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था।

५. यह कल्पना करना कि यतिवृषभ द्वारा उसका शौरसेनीकरण किया गया।

६. यतिवृषभ को यापनीय घोषित करना।

७. यतिवृषभ के नाम के साथ जुड़े 'यति' शब्द को यापनीयों की उपाधि मानकर उन्हें यापनीय सिद्ध करना।

यदि यतिवृषभ को यापनीय सिद्ध न किया जाता, तो कसायपाहुड के यापनीयों द्वारा शौरसेनीकरण का मिथ्यावाद युक्तिसंगत प्रतीत न होता। और तब उसके मूलतः अर्धमागधी में रचे जाने का मिथ्यावाद उपपन्न न होता। ऐसा होने पर उसके श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ होने और उससे श्वेताम्बरों और यापनीयों को उत्तराधिकार में प्राप्त होने के मिथ्यावाद की संगति न बैठती। इसलिए उक्त ग्रन्थ के लेखक के लिए अपना प्रयोजन सिद्ध करने हेतु यतिवृषभ को यापनीय सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक था। इसलिए उन्होंने यतिवृषभ को यापनीय घोषित कर दिया और उसके समर्थन में यह हेतु प्रस्तुत किया कि उनके नाम के साथ 'यति' शब्द जुड़ा हुआ है, जो यापनीय आचार्यों की उपाधि थी। देखिए उक्त ग्रन्थलेखक के निम्नलिखित शब्द—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"सम्भावना यही है कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती से अध्ययन करके यतिवृषभ ने ही इसे शौरसेनी प्राकृत का वर्तमान स्वरूप प्रदान कर चूर्णिसूत्र की रचना की हो।" (जै.ध.या.स./पृ.८५)।

"हमने आगमों की चर्चा के प्रसंग में देखा था कि आगमों का शौरसेनीकरण यापनीयपरम्परा का वैशिष्ट्य रहा है। इसी प्रकार कसायपाहुड का शौरसेनीकरण भी यापनीयपरम्परा की ही देन है।" (जै.ध.या.स./पृ.८६)।

"हो सकता है इस (कसायपाहुड) पर चूर्णिसूत्रों के रचयिता यतिवृषभ यापनीय हों, क्योंकि यापनीयों में अपने नाम के आगे 'यति' शब्द लगाने की प्रवृत्ति रही है, जैसे—**यतिग्रामाग्रणी भदन्त शाकटायन।**" (जै.ध.या.स./पृ.८७)।

दिगम्बरपक्ष

डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने यापनीयसंघ के विषय में विस्तृत अनुसन्धान किया है। इस संघ के आचार्यों की कोई पट्टावली या गुर्वावली नहीं है। उनकी विशेष जानकारी दक्षिणभारत में विभिन्न राजाओं के द्वारा संघ को दिये गये दान का वर्णन करनेवाले शिलालेखों से ही मिलती है। ये शिलालेख ५वीं शती ई० से १४वीं शती ई० तक के हैं। इनमें विभिन्न गणों के अनेक यापनीय-आचार्यों के नामों का उल्लेख है, जैसे दामकीर्ति, जयकीर्ति, बन्धुसेन, कुमारदत्त, अर्हनन्दी, शुभचन्द्र, सिद्धान्तदेव आदि।[५] किन्तु किसी भी अभिलेख में यतिवृषभ जैसे प्रसिद्ध आचार्य का नाम नहीं है। कसायपाहुड जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ पर जिसने चूर्णिसूत्र लिखे तथा तिलोयपण्णत्ती जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की, उस आचार्य के नाम का यापनीय-आचार्यों और साधुओं का उल्लेख करनेवाले लेखों में उपलब्ध न होना यही सिद्ध करता है कि यतिवृषभ यापनीयसंघ के आचार्य नहीं थे, अपितु दिगम्बराचार्य थे।

६

यतिवृषभ यापनीयमत-विरोधी 'तिलोयपण्णत्ती' के कर्त्ता

कसायपाहुड पर चूर्णिसूत्र लिखनेवाले यतिवृषभ तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ के भी कर्त्ता हैं। इसमें उन्होंने सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि यापनीयमत-विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इससे सिद्ध है कि वे दिगम्बरपरम्परा के आचार्य थे, यापनीय-परम्परा के नहीं। तिलोयपण्णत्ती के यापनीयमतविरोधी सिद्धान्तों का सोदाहरण निरूपण **तिलोयपण्णत्ती** नामक सप्तदश अध्याय में द्रष्टव्य है।

५. 'जैन सम्प्रदाय के यापनीय संघ पर कुछ और प्रकाश'/ 'अनेकान्त'/ महावीरनिर्वाण विशेषांक/ सन् १९७५ ई०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

दिगम्बरमुनियों के भी नाम में 'यति' शब्द

तथा यापनीयपक्षधर पूर्वोक्त ग्रन्थलेखक का यह कथन समीचीन नहीं है कि यापनीय-मुनियों में अपने नाम के साथ 'यति' शब्द लगाने की प्रवृत्ति रही है, क्योंकि सर्वप्रथम तो **यतिग्रामाग्रणी भदन्त शाकटायन** इस उदाहरण में 'यति' शब्द नाम के साथ नहीं, अपितु उपाधि के साथ जुड़ा है, अतः यह नाम के साथ 'यति' शब्द जुड़े होने का उदाहरण नहीं है। दूसरे, सभी यापनीय मुनियों या आचार्यों के साथ 'यति' उपाधि नहीं मिलती, जैसे ऊपर उद्धृत किये गये शिलालेखीय नामों के साथ। तीसरे, दिगम्बरमुनियों के साथ भी 'यति' उपाधि का प्रयोग मिलता है, जैसे न्यायदीपिका के कर्त्ता **अभिनव-धर्मभूषणयति** के साथ। इस प्रकार सभी यापनीय मुनियों के नाम के साथ 'यति' शब्द उपलब्ध न होने तथा दिगम्बरमुनियों के भी नाम के साथ इसका प्रयोग होने से यह यापनीय मुनियों का असाधारणधर्म या लक्षण नहीं है। अतः नाम के साथ 'यति' शब्द का प्रयोग मुनियों के यापनीय होने का हेतु नहीं है, अपितु अहेतु या हेत्वाभास है। इसलिए आचार्य यतिवृषभ के नाम में 'यति' शब्द होने से यह सिद्ध नहीं होता कि वे यापनीय थे।

८

अर्धमागधी प्रति के अभाव में शौरसेनीकरण असंभव

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक का कथन है कि उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा में रचित अर्धमागधी-कसायपाहुड उत्तराधिकार में श्वेताम्बरों और यापनीयों दोनों को प्राप्त हुआ था। वह यापनीयपरम्परा में यतिवृषभ के द्वारा शौरसेनी में रूपान्तरित किया गया। यही वर्तमान में उपलब्ध है। (जै.ध.या.स./ पृ.८५, ८६, ८९)।

दिगम्बरपक्ष

यदि वह ग्रन्थ दोनों परम्पराओं को उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ होता, तो जैसे यतिवृषभ को शौरसेनीकरण तथा चूर्णिसूत्र लिखने के लिए उपलब्ध था, वैसे ही श्वेताम्बरपरम्परा में भी वह अर्धमागधी में उपलब्ध होना चाहिए था। किन्तु वह श्वेताम्बर-परम्परा में उपलब्ध नहीं है, न ही उसके उपलब्ध होने का कोई इतिहास श्वेताम्बरसाहित्य में विद्यमान है, इससे सिद्ध है कि उत्तराधिकार में प्राप्त होने की बात मनगढ़ंत है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि जिस श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से उत्तराधिकार में कसायपाहुड की प्राप्ति बतलायी गयी है, उसका अस्तित्व ही नहीं था। अतः उससे किसी वस्तु का उत्तराधिकार में प्राप्त होना असंभव था। इसलिए जब अर्धमागधी कसायपाहुड के उत्तराधिकार में प्राप्त होने की बात ही कपोलकल्पित है, तब उसके शौरसेनीकरण की बात का कपोलकल्पित होना स्वतः सिद्ध है। इस तरह यतिवृषभ को यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया यह हेतु भी असत्य है। यतिवृषभ यापनीय नहीं दिगम्बर थे। उन्हें अपने दिगम्बर गुरुओं, आर्यमंक्षु और नागहस्ती से शौरसेनी में ही कसायपाहुड की गाथाएँ प्राप्त हुई थीं, अतः उनके शौर-सेनीकरण की आवश्यकता ही नहीं थी।

९

श्वेताम्बरपरम्परा में अर्धमागधी-कसायपाहुड का अभाव

श्वेताम्बरसाहित्य में ऐसा उल्लेख कहीं नहीं है कि कसायपाहुड नाम का कोई श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है और उसके रचयिता गुणधर, गुणन्धर, आर्यमंक्षु या नागहस्ती हैं अथवा आर्यमंक्षु और नागहस्ती को आचार्यपरम्परा से उसका ज्ञान प्राप्त हुआ था और उनके पादमूल में बैठकर यतिवृषभ ने उसका अर्थश्रवण किया था।

कसायपाहुड की अर्धमागधी में कोई प्रति उपलब्ध नहीं है, न श्वेताम्बरशास्त्र-भण्डारों में, न अन्यत्र। न ही श्वेताम्बरसाहित्य की सूचियों में या किसी श्वेताम्बरग्रन्थ में अर्धमागधी कसायपाहुड के अस्तित्व का उल्लेख है। यह भी नहीं माना जा सकता कि भारतवर्ष के सभी श्वेताम्बर शास्त्रभण्डारों और भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना जैसे पुराने ग्रन्थालयों से केवल अर्धमागधी-कसायपाहुड की प्रतियाँ एकसाथ लुप्त हो गयीं, बाकी सब ग्रन्थ सुरक्षित रहे। ऐसा तो कोई शत्रु भी योजनाबद्ध तरीके से करना चाहे, तो नहीं कर सकता, तब स्वयं श्वेताम्बरों के द्वारा ऐसा कैसे हो सकता था?

'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' के लेखक ने स्वयं अपनी यह मान्यता प्रकट की है कि आचार्य यतिवृषभ का स्थितिकाल ईसा की छठी-सातवीं शती है। (पृ.१११)। उनकी मान्यता के अनुसार यदि यतिवृषभ ने कसायपाहुड का शौरसेनीकरण किया हो, तो इसी समय किया होगा। इसके पूर्व पाँचवी शती ई० में वलभी में देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण द्वारा सभी श्वेताम्बरग्रन्थ पुस्तकारूढ़ किये जा चुके थे। इससे स्पष्ट है कि यतिवृषभ को कसायपाहुड की अर्धमागधी प्रति उपलब्ध रही होगी, जिसके आधार पर उन्होंने उसका शौरसेनीकरण किया होगा। अतः जब ईसा की छठी-सातवीं शती

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में कसायपाहुड की दोनों प्राकृतों में निबद्ध प्रतियाँ उपलब्ध थीं, तब यह कैसे सम्भव है कि शौरसेनी प्रतियाँ दिगम्बरभण्डारों में सुरक्षित रही आयीं और अर्धमागधी प्रतियाँ श्वेताम्बरभण्डारों से लुप्त हो गयीं? यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। इसलिए श्वेताम्बर-परम्परा में अर्धमागधी कसायपाहुड का उपलब्ध न होना यही सिद्ध करता है कि न तो इस परम्परा में उसकी रचना हुई थी, न ही उसका कपोलकल्पित श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त होना संभव था।

मुनि कल्याणविजय जी ने कसायपाहुड के श्वेताम्बरग्रन्थ होने का मत प्रकट किया है। किन्तु उन्होंने यह कल्पना नहीं की, कि वह अर्धमागधी में भी था और उसका शौरसेनीकरण यतिवृषभ ने किया था। उन्होंने कसायपाहुड को शौरसेनी में ही मूलतः निबद्ध माना है। अतः उपर्युक्त ग्रन्थ के लेखक ने मुनि जी के मत से असहमति प्रकट की है। वे लिखते हैं—"श्वेताम्बरपरम्परा में कोई भी शौरसेनी प्राकृत की रचना उपलब्ध नहीं है। अतः कसायपाहुड के वर्तमानस्वरूप को श्वेताम्बरपरम्परा की रचना तो नहीं कहा जा सकता, जैसा कि कल्याण-विजय जी ने माना है।" (जै.ध.या.स./पृ.८५)। इससे यह संभावना निरस्त हो जाती है कि वर्तमान शौरसेनी-कसायपाहुड ही श्वेताम्बरसम्प्रदाय को अपनी श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से प्राप्त हुआ था।

मुनि कल्याणविजय जी ने नन्दिसूत्र की स्थविरावली में आर्यमंक्षु और नागहस्ती के नाम उपलब्ध होने से कसायपाहुड को श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ माना है। इसका खंडन करते हुए पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने कहा है कि यदि ऐसा होता, तो श्वेताम्बर-परम्परा में कसायपाहुड अनुपलब्ध न होता और दिगम्बरपरम्परा में उसके दर्शन न होते। उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया है कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती से दिगम्बरों को ही कसायपाहुड उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। वे लिखते हैं—

"इन दोनों आचार्यों का नाम नन्दिसूत्र की पट्टावली में अवश्य आता है और उसमें नागहस्ती को वाचकवंश का प्रस्थापक और कर्मप्रकृति का प्रधान विद्वान् भी कहा गया है। किन्तु इन दोनों आचार्यों के मन्तव्य का एक भी उल्लेख श्वेताम्बर-परम्परा के आगमिक या कर्मविषयक साहित्य में उपलब्ध नहीं होता, जब कि धवला और जयधवला में उनके मतों का उल्लेख बहुतायत से पाया जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः जयधवलाकार के सन्मुख इन दोनों आचार्यों की कोई कृति रही हो। इन्हीं दोनों आचार्यों के पास कसायपाहुड का अध्ययन करके आचार्य यतिवृषभ ने अपने चूर्णिसूत्रों की रचना की थी, और बाद को उन्हीं के आधार पर अनेक आचार्यों ने कसायपाहुड-वृत्तियाँ आदि लिखी थीं। सारांश यह है कि दिगम्बरपरम्परा को कसायपाहुड और उसका ज्ञान आर्यमंक्षु और नागहस्ती से ही प्राप्त हुआ था। ये

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दोनों आचार्य श्वेताम्बर परम्परा के ही होते, तो कसायपाहुड या तो दिगम्बरपरम्परा को प्राप्त ही नहीं होता, यदि होता भी, तो श्वेताम्बरपरम्परा उससे एकदम अछूती न रह जाती।

"शायद कहा जाये, जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, कि कषायप्राभृत के 'संक्रम अनुयोगद्वार' की कुछ गाथाएँ कर्मप्रकृति में पायी जाती हैं, अतः श्वेताम्बरपरम्परा को उससे एकदम अछूता तो नहीं कहा जा सकता। इसके सम्बन्ध में हमारा मन्तव्य है कि प्रथम तो संक्रम-अनुयोगद्वार-सम्बन्धी गाथाओं के गुणधर-रचित होने में पूर्वाचार्यों में मतभेद था। कुछ आचार्यों का मत था कि उनके रचयिता आचार्य नागहस्ती थे। यद्यपि जयधवलाकार इस मत से सहमत नहीं हैं, फिर भी मात्र उतनी गाथाओं के कर्मप्रकृति में पाये जाने से यह नहीं कहा जा सकता कि आचार्य गुणधर का वारसा दिगम्बरपरम्परा की तरह श्वेताम्बरपरम्परा को भी प्राप्त था। दूसरे, हम यह पहले बतला आये हैं कि कषायप्राभृत की संक्रमप्रवृत्तिसम्बन्धी जो गाथाएँ कर्मप्रकृति में पायी जाती हैं, उनमें कषायप्राभृत की गाथाओं से कुछ भेद भी है और वह भेद सैद्धान्तिक मतभेद को लिये हुए है। यदि कषायप्राभृत में उपलब्ध पाठ श्वेताम्बरपरम्परा को मान्य होता, तो कर्मप्रकृति में उसे हम ज्यों का त्यों पाते, कम से कम उसमें सैद्धान्तिक मतभेद न होता।" (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ.६५)।

निष्कर्ष यह कि श्वेताम्बरपरम्परा में अर्धमागधी और शौरसेनी दोनों भाषाओं के कसायपाहुड की अनुपलब्धि सिद्ध करती है कि जिसे उक्त मान्य विद्वान् ने श्वेताम्बरों और यापनीयों की मातृपरम्परा कहा है और दोनों को जिसकी विरासत का उत्तराधिकारी बतलाया है, उससे श्वेताम्बरों को कसायपाहुड उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं हुआ। तब एक महान् प्रश्न खड़ा हो जाता है कि जिस मातृपरम्परा के श्वेताम्बर और यापनीय दोनों उत्तराधिकारी थे, उससे उत्तराधिकार में कसायपाहुड यापनीयों को तो प्राप्त हो गया, किन्तु श्वेताम्बरों को प्राप्त नहीं हुआ, इसका क्या कारण था? कारण स्पष्ट है कि ऐसी कोई परम्परा थी ही नहीं। यदि होती, तो जिस तरह यापनीयों को उससे उत्तराधिकार में कसायपाहुड की प्राप्ति मानी गयी है, उसी प्रकार श्वेताम्बरों को भी वह अवश्य ही प्राप्त हुआ होता। अपनी मातृपरम्परा की इतनी बहुमूल्य विरासत को दूसरा भाई कैसे छोड़ देता? श्वेताम्बरों के पास इतनी बहुमूल्य विरासत नहीं है, इससे यही सिद्ध होता है कि जिस मातृपरम्परा की यह विरासत मानी गई है, उसका अस्तित्व ही नहीं था। वह सर्वथा मनःकल्पित है। इससे यह स्वतः सिद्ध होता है कि यापनीयों को भी यह विरासत प्राप्त नहीं हुई थी। क्योंकि जो परम्परा थी ही नहीं, उससे किसी को भी कोई विरासत कैसे प्राप्त हो सकती थी? अतः सिद्ध है

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कि यापनीयों को अपनी श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से उत्तराधिकार में कसायपाहुड प्राप्त होने की कथा सर्वथा मनःकल्पित है।

१०

सित्तरीचूर्णि-निर्दिष्ट कसायपाहुड गुणधरकृत

यापनीयपक्ष

"श्वेताम्बरपरम्परा के ग्रन्थ सित्तरीचूर्णि में कसायपाहुड का स्पष्टरूप से निर्देश मिलता है, जैसे—

क—"तं वेयंतो बितिय किट्टीओ तइय किट्टीओ य दलियं घेत्तूणं सुहुमसांपराइय किट्टीओ करेइ तिसिं लक्खणं जहा **कसायपाहुडे**।"

ख—"एत्थ अपुव्वकरण अणियट्टि अद्धासुअणगाइ वत्तव्वगाइं जहा, **कसायपाहुडे**, कम्मपगडि संगहणीए व तहा वत्तव्वं।" ('सित्तरी' पत्र ६२/२)।

"उक्त उद्धरणों से यह तो निश्चित ही सिद्ध हो जाता है कि सित्तरीचूर्णिकार कसायपाहुड से परिचित हैं और वे उसे अपनी ही परम्परा के ग्रन्थ के रूप में उद्धृत करते हैं।" (जै.ध.या.स./पृ.८५-८६)।

दिगम्बरपक्ष

मान्य ग्रन्थलेखक का यह कथन सर्वथा सत्य है कि सित्तरीचूर्णिकार ने कसाय-पाहुड का स्पष्टरूप से निर्देश किया है, इससे सिद्ध होता है कि वे कसायपाहुड से परिचित हैं। किन्तु उन्होंने उसे अपनी ही परम्परा के ग्रन्थ के रूप में उद्धृत किया है, यह निष्कर्ष मान्य ग्रन्थलेखक ने किस आधार पर निकाला, यह समझ में नहीं आया। यदि किसी जैन ग्रन्थ में किसी बौद्ध या वैदिक ग्रन्थ के नाम का उल्लेख किया गया हो या उससे कोई उद्धरण दिया गया हो, तो क्या वह बौद्ध या वैदिक ग्रन्थ जैनपरम्परा का ग्रन्थ मान लिया जायेगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार श्वेताम्बरग्रन्थ सित्तरीचूर्णि में दिगम्बरग्रन्थ कसायपाहुड का उल्लेख होने से वह श्वेताम्बर-परम्परा का ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि श्वेताम्बरपरम्परा में किसी श्वेताम्बराचार्य द्वारा अर्धमागधी में रचित कसायपाहुड का कभी अस्तित्व ही नहीं रहा, तब सित्तरीचूर्णि में निर्दिष्ट कसायपाहुड श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ कैसे हो सकता है? स्वयं सित्तरीचूर्णिकार ने यह नहीं कहा कि वे अपनी ही परम्परा के कसायपाहुड का उल्लेख कर रहे हैं। अतः यह निष्कर्ष प्रामाणिक नहीं है।

यदि यह नियम माना जाय कि ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ में जिस अन्य ग्रन्थ को उद्धृत करता है, वह उसी की परम्परा का होता है, तो इस नियम से भी कसायपाहुड दिगम्बरपरम्परा का ही सिद्ध होता है, क्योंकि दिगम्बराचार्य यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्र में,[६] वीरसेन स्वामी ने जयधवला में तथा इन्द्रनन्दी और विबुधश्रीधर ने अपने श्रुतावतारों में कसायपाहुड को उद्धृत किया है।

किन्तु यह नियम उपपन्न नहीं होता, क्योंकि यहीं पर हम देखते हैं कि सित्तरीचूर्णि में उद्धृत होने से कसायपाहुड श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध होता है और यतिवृषभ आदि द्वारा अपने-अपने ग्रन्थ में उद्धृत किये जाने से दिगम्बरपरम्परा का। यतः यह नियम उपपन्न नहीं होता, अतः सित्तरीचूर्णिकार ने कसायपाहुड का उल्लेख अपनी ही परम्परा के ग्रन्थ के रूप में किया है, यह मान्यता अप्रामाणिक है। इसलिए कसायपाहुड को श्वेताम्बर या यापनीय-परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया यह हेतु असत्य है। चूँकि श्वेताम्बर-परम्परा में कसायपाहुड का अस्तित्व ही नहीं था, अतः सिद्ध है कि सित्तरीचूर्णि में दिगम्बरपरम्परा के ही कसायपाहुड को अपने कथन की पुष्टि के लिए उद्धृत किया गया है, क्योंकि दोनों परम्पराओं में कर्मसिद्धान्त के विषय में बहुतर साम्य है।

एक दूसरी संभावना भी है। कर्मसाहित्य के अध्येता पण्डित हीरालाल जी शास्त्री ने कसायपाहुडचूर्णिसूत्र, कम्मपयडी तथा सतक एवं सित्तरी की चूर्णियों का सूक्ष्म अध्ययन कर उनके अत्यन्त साम्य के कारण यह पाया है कि इन सभी चूर्णियों के कर्त्ता आचार्य यतिवृषभ हैं।[७] अतः यतिवृषभ के द्वारा सित्तरीचूर्णि में कसायपाहुड को प्रमाणरूप में या तुलना के लिए उद्धृत किया जाना स्वाभाविक ही है। यद्यपि 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने इसका खण्डन करते हुए पं० हीरालालजी शास्त्री के निष्कर्ष को सम्प्रदायिक आग्रह का परिणाम बतलाया है,[८] किन्तु शास्त्री जी ने षट्खण्डागम की प्रस्तावना में जब भ्रान्तिवश यह लिखा कि 'जीवसमास' (श्वेताम्बरग्रन्थ) षट्खण्डागम की जीवट्ठाण-प्ररूपणाओं का आधार रहा है,[९] तब उक्त ग्रन्थ के लेखक ने इन्हीं शास्त्री

---

६. "तस्स पाहुडस्स दुवे णामधेज्जाणि। तं जहा पेज्जदोसपाहुडे त्ति वि कसायपाहुडे त्ति वि।" कसायपाहुडसुत्त / पेज्जदोस-विहत्ती / सूत्र २१। (क.पा./भाग १ / गा. १३-१४ / पृ. १८१)।

७. कसायपाहुडसुत्त / प्रस्तावना / पृ.३८-५६।

८. जै.ध.या.स./ पृ.१०९-११०।

९. षट्खण्डागम/सम्पादिका : ब्र.पं. सुमतिबाई शहा/श्री श्रुतभाण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति, फलटण, १९६५। इसकी भूमिका में शास्त्री जी ने उक्त विचार व्यक्त किया है। डॉ. सागरमल जी ने 'जीवसमास' (अनु.-साध्वी विद्युत्प्रभाश्री) की भूमिका (पृ.XXXI-Xli) में शास्त्री जी द्वारा लिखित सम्पूर्ण भूमिका उद्धृत की है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जी को निष्पक्षता का प्रमाणपत्र देकर षट्खण्डागम के विशिष्ट विद्वान्, बहुश्रुतविद्वान् आदि विशेषणों के द्वारा उनकी बड़ी प्रशंसा की थी।[१०] एक ही व्यक्ति साम्प्रदायिक और निष्पक्ष, दोनों नहीं हो सकता। अतः उक्त ग्रन्थलेखक ने पं० हीरालाल जी शास्त्री को यदि जीवसमास और षट्खण्डागम के प्रकरण में निष्पक्ष माना है, तो कसायपाहुडचूर्णि, कम्मपयडिचूर्णि आदि के प्रकरण में भी निष्पक्ष मानना होगा। यद्यपि शास्त्री जी का जीवसमास और षट्खण्डागम-सम्बन्धी मत भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि षट्खण्डागम की रचना ईसापूर्व प्रथमशती (पूर्वार्ध) में हुई थी, जब कि 'जीवसमास' को स्वयं डॉक्टर सागरमल जी ने छठी शती ई० में रचित बतलाया है (देखिये, अध्याय १०/प्र.५/शी.५), अतः 'जीवसमास' का षट्खण्डागम की जीवट्ठाण-प्ररूपणाओं का आधार होना असंभव है, तथापि शास्त्री जी का कसायपाहुडचूर्णि, कम्मपयडिचूर्णि आदि से सम्बन्धित मत प्रामाणिक है।

माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी कसायपाहुडचूर्णि और कम्मपयडिचूर्णि के अत्यन्त साम्य को दर्शाते हुए माना है कि कर्मप्रकृति के चूर्णिकार ने कसायपाहुड के चूर्णिसूत्रों को देखा था। उनका कसायपाहुड (भाग १) की प्रस्तावना (पृ.२२-२४) में उल्लिखित यह वक्तव्य द्रष्टव्य है—

"कसायपाहुड के साथ जिस श्वेताम्बरीय ग्रन्थ कर्मप्रकृति की तुलना कर आये हैं, उसी कर्मप्रकृति पर एक चूर्णि भी है। किन्तु उसके रचयिता का पता नहीं लग सका है। जैसे कसायपाहुड के संक्रम-अनुयोगद्वार की कुछ गाथाएँ कर्मप्रकृति के संक्रमकरण से मिलती हुई हैं, उसी प्रकार उन्हीं गाथाओं पर की चूर्णि में भी परस्पर में समानता है। हम लिख आये हैं कि कसायपाहुड के संक्रम-अनुयोगद्वार की १३ गाथाएँ कर्मप्रकृति के संक्रमकरण में हैं। इन गाथाओं में से पहली ही गाथा पर यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्र रचे हैं। कर्मप्रकृति में भी उस गाथा तथा उसके आगे की एक गाथा पर ही चूर्णि पाई जाती है, शेष ग्यारह गाथाओं पर चूर्णि ही नहीं है। उससे आगे फिर उन्हीं गाथाओं से चूर्णि प्रारम्भ होती है, जो कसायपाहुड में नहीं है। यह सादृश्य काकतालीयन्याय से अचानक ही हो गया है या इसमें भी कुछ ऐतिहासिक तथ्य है, यह अभी विचाराधीन है। अस्तु, यह समानता तो चूर्णि की रचना करने और न करने की है। दोनों चूर्णियों में कहीं-कहीं अक्षरशः समानता भी पाई जाती है। जैसे-कसायपाहुड के चारित्रमोहोप-शामना नामक अधिकार में चूर्णिसूत्रकार ने उपशामना का वर्णन इस प्रकार किया है—

---

१०. देखिए, 'जीवसमास' (अनु.-साध्वी विद्युत्प्रभाश्री) / भूमिका / पृ.XI - XII ।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

''उवसामणा दुविहा–करणोवसामणा च अकरणोवसामणा च। जा सा अकरणोवसामणा तिस्से इमे दुवे णामधेयाणि–अकरणोवसामणा त्ति वि अणुदिण्णोवसामणा त्ति वि। एसा कम्मपवादे। जा सा करणोवसामणा सा दुविहा—देसकरणोवसामणा त्ति वि सव्वकरणोवसामणा त्ति वि। देसकरणोवसामणाए दुवे णामाणि—देसकरणोवसामणा त्ति वि अप्पसत्थउवसामणा त्ति वि। एसा कम्मपयडीसु। जा सा सव्वकरणोवसामणा तिस्से वि दुवे णामाणि सव्वकरणोवसामणा त्ति वि पसत्थकरणोवसामणा त्ति वि।'' (क.पा./भाग १४ / पृ.२-९)।

''इसकी तुलना कर्मप्रकृति के उपशामनाकरण की पहली और दूसरी गाथा की इस चूर्णि से करना चाहिये—

१. **''करणोवसामणाा अकरणोवसामणा दुविहा उपसामणत्थ। वितिया अकरणोवसामणा तीसे दुवे नामधिज्जाणि–अकरणोवसामणा अणुदिन्नोवसामणा य।--- सा अकरणोवसामणा ताते अणुओगो वोच्छिन्नो।''**

२. **''सा करणोवसामणा दुविहा–सव्वकरणोपसामणा देसकरणोवसामणा च। एक्केक्का दो दो णामा। सव्वोवसामणाते गुणोवसमणा पसत्थोपसामणा य णामा। देसोपसमणादे तासिं विवरीया दो नामा अगुणोपसमणा अपसत्थोपसमणा य।''**

''यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उपशामना के ये भेद और उनके नाम कर्मप्रकृति के उपशामनाकरण की पहली और दूसरी गाथा में दिये हैं, उन्हीं के आधार पर चूर्णिकार ने चूर्णि में दिये हैं। किन्तु कसायपाहुड की गाथाओं में **उवसामणा कदिविधा** (क.पा./भाग १३/पृ.१९१) लिखकर ही उसकी समाप्ति कर दी गई है। और चूर्णिसूत्रकार ने स्वयं ही गाथा के इस अंश का व्याख्यान करने के लिए उक्त चूर्णिसूत्र रचे हैं। दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य है कि चूर्णिसूत्रकार अकरणोपशामना का वर्णन कर्मप्रवाद नामक पूर्व में बतलाते हैं, जब कि कर्मप्रकृति की चूर्णि में लिखा है कि 'अकरणोपशामना का अनुयोग विच्छिन्न हो गया' और कर्मप्रकृति के रचयिता भी उससे अनभिज्ञ थे।

''कसायपाहुड के उक्त अधिकार में उपशमश्रेणि से प्रतिपात का कारण बतलाकर यह भी बतलाया है कि किस अवस्था में गिरकर जीव किस गुणस्थान में आता है। गाथा निम्नप्रकार है—

दुविहो खलु पडिवादो भवक्खयादुवसमक्खयादो दु।
सुहुमे च संपराए बादररागे च बोद्धव्वा॥ १२१॥

(क.पा. / भा.१३)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इस पर चूर्णिसूत्र इस प्रकार है—

"**दुविहो पडिवादो—भवक्खयेण च उवसामणाक्खयेण च। भवक्खयेण पदिदस्स सव्वाणि करणाणि एगसमएण उग्घाडिदाणि। पढमसमए चेव जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलियं पवेसदाणि। जाणि ण उदीरिज्जंति ताणि वि ओकड्डियूण आवलियबाहिरे गोवुच्छाए सेढीए णिक्खित्ताणि। जो उवसामणाक्खयेण पडिवडदि तस्स विहासा।**" (क.पा./भाग १४/पृ.४५-४७)।

"इसका मिलान कर्मप्रकृति के उपशमनाकरण की ५७वीं गाथा की इस चूर्णि से कीजिये—

"**इयाणि पडिवातो सो दुविहो—भवक्खएण उवसमद्धक्खएण य। जो भवक्खएण पडिवडइ तस्स सव्वाणि करणाणि एगसमतेण उग्घाडियाणि भवंति। पढमसमते जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलिगं पवेसयाणि। जाणि ण उदीरिज्जंति ताणि उक्कड्डिऊण उदयावलिबाहिरतो उवरिं गोपुच्छागितीते सेढीते रतेति। जो उवसमद्धक्खएणं परिपडति तस्स विहासा।**"

"यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रतिपात के इन भेदों की चर्चा कर्मप्रकृति की उस गाथा में तो है ही नहीं, जिसकी यह चूर्णि है, किन्तु अन्यत्र भी हमारी दृष्टि से नहीं गुजर सकी। दूसरे, **तस्स विभासा** करके लिखने की शैली चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ की ही है। यह हम पहले उनकी व्याख्यानशैली का परिचय कराते हुए लिख आये हैं। कर्मप्रकृति की कम से कम उपशमनाकरण की चूर्णि में तो **तस्स विभासा** लिख करके गाथा के व्याख्यान करने का क्रम इसके सिवाय अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं हो सका। कर्मप्रकृति के चूर्णिकार तो गाथा का पद देकर ही उसका व्याख्यान करते हैं। जैसे इसी गाथा के व्याख्यान में—"**उवसंता य अकरण त्ति—उवसंतातो मोहपगडीतो करणा य ण भवंति।**" उनका सर्वत्र यही क्रम है। तीसरे, एक दूसरे की रचना को देखे बिना इतना साम्य होना संभव प्रतीत नहीं होता। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मप्रकृति के चूर्णिकार ने कसायपाहुड के चूर्णिसूत्रों को देखा था।" (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ.२२-२४)।

उक्त दोनों विद्वानों के विश्लेषणों पर विचार करने से दो ही विकल्प सामने आते हैं कि या तो उपर्युक्त सभी चूर्णियों के कर्त्ता आचार्य यतिवृषभ हैं अथवा वे सभी कसायपाहुड-चूर्णिसूत्रों के आधार पर लिखी गई हैं। इसीलिए सित्तरीचूर्णि में कसायपाहुड का उल्लेख हुआ है।

चन्द्रर्षि महत्तर (विक्रम की ९वीं-१०वीं शती) ने पञ्चसंग्रह में शतक (सतक), सप्ततिका (सत्तरी), कषायप्राभृत (कसायपाहुड), सत्कर्म और कर्मप्रकृति (कम्मपयडी)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इन पाँच ग्रन्थों का संक्षेप में संग्रह किया है।[११] यत: श्वेताम्बरपरम्परा में अर्धमागधी या शौरसेनी प्राकृत में रचित कसायपाहुड का कभी अस्तित्व नहीं रहा, इसलिए यही सिद्ध होता है कि चन्द्रर्षि महत्तर ने साम्प्रदायिक भेदभाव न करते हुए कसायपाहुड की उत्कृष्टता और प्राचीनता को देखकर दिगम्बरग्रन्थ होते हुए भी उसकी गाथाओं का पंचसंग्रह में संग्रह किया है।

मलयगिरि (१२वीं शती ई०) ने अपनी टीका में उक्त पाँच ग्रन्थों में से कषायप्राभृत को छोड़कर शेष चार का प्रमाणरूप से उल्लेख किया है।[१२] यह दर्शाता है कि उनके समय में साम्प्रदायिक भेदभाव तीव्र हो गया था, इसलिए उन्होंने दिगम्बरीय ग्रन्थ होने के कारण कसायपाहुड का प्रमाणरूप से उल्लेख नहीं किया, अन्यथा शौरसेनी में निबद्ध कसायपाहुड तो आज भी उपलब्ध है। डॉक्टर सागरमल जी की मान्यतानुसार शौरसेनी-कसायपाहुड अर्धमागधी-कसायपाहुड का यतिवृषभकृत रूपान्तरणमात्र है, मूलगाथाएँ तो वही थीं, अत: यदि मान्य विद्वान् के अनुसार मलयगिरि को श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त अर्धमागधी-कसायपाहुड उपलब्ध नहीं था, तो वे दिगम्बरपरम्परा की प्रति का उपयोग कर सकते थे, जैसा चन्द्रर्षि महत्तर ने किया। किन्तु ऐसा नहीं किया गया, इससे सिद्ध है कि श्वेताम्बरपरम्परा में कसायपाहुड का अस्तित्व ही नहीं था। दिगम्बरपरम्परा में था, किन्तु साम्प्रदायिक भेदभाव के कारण उसे प्रमाणरूप से उद्धृत करने के लिए मलयगिरि तैयार नहीं हुए।

इस तरह सित्तरीचूर्णि में कसायपाहुड का उल्लेख तथा पञ्चसंग्रह में उसकी गाथाएँ संगृहीत होने से भी यह सिद्ध नहीं होता कि श्वेताम्बरपरम्परा में कसायपाहुड का अस्तित्व था। उक्त ग्रंथों में दिगम्बरपरम्परा के ही कसायपाहुड का उल्लेख है तथा उसी की गाथाएँ उद्धृत हैं।

११
कसायपाहुड पर श्वेताम्बरीय टीका नहीं

कसायपाहुड पर चूर्णिसहित सभी टीकाएँ दिगम्बराचार्यों द्वारा ही लिखी गई हैं, श्वेताम्बराचार्यों ने कोई भी टीका नहीं लिखी। (देखिए, जयधवलासहित कसायपाहुड/

११. क— जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ.८६ तथा कसायपाहुडसुत्त/प्रस्तावना—पं. हीरालाल जी शास्त्री/पृ.६०।
ख— चन्द्रर्षि महत्तर का समय विक्रम की ९वीं-१०वीं शताब्दी (डॉ. जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास/पृ.२९१)।

१२. क— जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ.८६।
ख— मलयगिरि का समय ईसवी सन् की १२वीं शती (डॉ. जगदीश चन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास/पृ. १०५)।

भाग १ / प्रस्तावना / पृ.९-१४)। यह भी कसायपाहुड के दिगम्बरग्रन्थ होने का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

इन समस्त युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध है कि श्वेताम्बरपरम्परा में कसायपाहुड कभी उपलब्ध नहीं रहा। अतः यापनीयपक्षपोषक उक्त विद्वान् ने जो यह कहा है कि श्वेताम्बर-परम्परा को श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा से उत्तराधिकार में कसायपाहुड प्राप्त हुआ था, वह अप्रामाणिक है। इससे यापनीयों को भी उस परम्परा से कसायपाहुड के उत्तराधिकार में प्राप्त होने का कथन मिथ्या सिद्ध हो जाता है। यह इस बात का सबूत है कि उस उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा में कसायपाहुड का अस्तित्व ही नहीं था। और यह तो पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि वह परम्परा ही कपोलकल्पित है। अतः जो परम्परा थी ही नहीं, उससे किसी भी वस्तु के उत्तराधिकार में प्राप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

१२
स्त्रीमुक्ति-समर्थन का मत असत्य

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्ष-समर्थक उक्त विद्वान् का कथन है कि कसायपाहुड के अनुसार स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदय रहते हुए भी जीव नौवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है और उसके बाद अपगतवेद (वेदरहित) होकर क्रमशः चौदहवाँ गुणस्थान भी प्राप्त कर सकता है। इस तरह कसायपाहुड में स्त्रीमुक्ति का समर्थन किया गया है। अतः वह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, अपितु श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का है। (जै.ध.या.स./पृ.८७-८८)।

दिगम्बरपक्ष

उन यापनीयपक्षधर विद्वान् के ही उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि अपगतवेदत्व गुणस्थानसिद्धान्त का अंग है। और यह भी उन्होंने ही स्वीकार किया है कि गुणस्थानसिद्धान्त श्वेताम्बरपरम्परा का सिद्धान्त नहीं है। यापनीय भी श्वेताम्बर-आगमों के अनुसर्त्ता थे तथा गुणस्थानसिद्धान्त श्वेताम्बर-मान्यताओं की तरह यापनीय-मान्यताओं का भी विरोधी है, अतः वह यापनीयमत का भी सिद्धान्त नहीं है। वह केवल दिगम्बरमत का सिद्धान्त है और उसके अनुसार भावमानुषी और भावनपुंसक मनुष्य ही नौवें गुणस्थान तक पहुँच सकते हैं और उसके अवेदभाग में अपगतवेद होते हैं, द्रव्यमानुषी और द्रव्य-नपुंसकपुरुष नहीं। अतः अपगतवेदी को चौदह गुणस्थानों की प्राप्ति के उल्लेख से स्त्रीमुक्ति सिद्ध नहीं होती।

तथा यह सिद्ध हो चुका है कि श्वेताम्बरपरम्परा में अर्धमागधी में रचित कसायपाहुड का कभी भी अस्तित्व नहीं रहा और शौरसेनी में रचित कसायपाहुड श्वेताम्बरपरम्परा का हो नहीं सकता। तथा यापनीयसाहित्य और यापनीय-शिलालेखों में न तो कसायपाहुड का उल्लेख है, न उसके कर्त्ता आचार्य गुणधर का, न कसायपाहुड को आचार्यपरम्परा से प्राप्त करनेवाले आर्यमंक्षु और नागहस्ती का, न ही इन दोनों के पादमूल में बैठकर उसका श्रवण करनेवाले आचार्य यतिवृषभ का। अतः उसे यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करनेवाला भी कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत उसे दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध करनेवाले अनेक प्रमाण हैं। तब उसमें स्त्रीमुक्ति के विधान की कल्पना करना श्वेताम्बर-आगमों में स्त्रीमुक्ति के निषेध की कल्पना करने के समान है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में वेदत्रय एवं वेदवैषम्य का भी प्रतिपादन है, जो यापनीय-मत-विरोधी सिद्धान्त हैं। इससे भी सिद्ध है कि वह यापनीय सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। अतः उसमें स्त्रीमुक्ति के विधान की कल्पना करना मनमानी कल्पना है। इस प्रकार कसायपाहुड में स्त्रीमुक्ति का विधान सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया अपगतवेदत्व का हेतु स्त्रीमुक्ति के विधान का साधक न होने से हेतु नहीं है, अपितु हेत्वाभास है।

उपर्युक्त यापनीयपक्षी विद्वान् का यह कथन भी समीचीन नहीं है कि "निश्चय ही लिङ्ग तो द्रव्यचिह्न होता है, बन्धन और मुक्ति का मूल आधार तो भाव ही होता है और वेद (कामवासना) का सम्बन्ध भाव से है।" (जै.ध.या.स./पृ.८७)। षट्खण्डागम के अध्याय में सोदाहरण स्पष्ट किया गया है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के आगमों में लिंग और वेद पर्यायवाचियों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, यथा द्रव्यलिंग और भावलिंग, द्रव्यवेद और भाववेद।

मान्य विद्वान् ने टिप्पणी की है कि "यह कहना कितना अयुक्तिसंगत और अध्यात्मवाद के विपरीत होगा कि जीव स्त्रीलिंग (स्त्रीशरीर) से युक्त होने पर तो पाँचवे गुणस्थान से आगे आध्यात्मिक विकास नहीं कर सकता, किन्तु स्त्रीवेद (स्त्री सम्बन्धी कामवासना) के होते हुए वह दसवें गुणस्थान तक आध्यात्मिक विकास कर सकता है। यदि 'कसायपाहुड' के कर्त्ता यह स्वीकार करते हैं कि स्त्रीवेद की उपस्थिति में दसवें गुणस्थान तक[१३] आध्यात्मिक विकास संभव है, तो वे स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं कर सकते।" (जै.ध.या.स./पृ.८८)।

---

१३. कसायपाहुड तथा अन्य दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार नौवें गुणस्थान के सवेदभाग पर्यन्त ही वेद का अस्तित्व रहता है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मान्य विद्वान् की यह टिप्पणी समीचीन नहीं है। आध्यात्मिक विकास का साधन योग्य शरीर ही है, अयोग्य शरीर नहीं। जैसे देवशरीर, तिर्यंचशरीर और नारकशरीर से आध्यात्मिक विकास की साधना संभव नहीं है, वैसे ही वज्रवृषभनाराचसंहनन-रहित, वस्त्रपरिग्रहत्याग की योग्यता से रहित एवं सम्मूर्च्छनजीवों की प्रचुर उत्पत्ति एवं मरण के स्थानभूत मानवशरीर से भी आध्यात्मिक विकास की साधना असंभव है। ऐसा शरीर मानव-स्त्री का होता है, अत: वह उच्च आध्यात्मिक विकास की साधना के योग्य नहीं है। इसलिए उसे धारण करनेवाला जीव पाँचवे गुणस्थान से ऊपर नहीं उठ सकता। किन्तु मानवपुरुषशरीर उच्चतम आध्यात्मिक विकास की साधना के योग्य होता है, अत: उसे धारण करनेवाला जीव स्त्रीवेद का उदय रहते हुए भी नौवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है। स्त्रीवेद तो कषाय है। जैसे अन्य कषायों का उदय मानवपुरुषशरीरधारी जीव के नौवें गुणस्थान तक पहुँचने में बाधक नहीं होता, वैसे ही स्त्रीवेद का उदय भी बाधक नहीं होता। यह न तो तनिक भी अयुक्तिसंगत है, न अध्यात्मवाद के विपरीत। कसायपाहुड के कर्त्ता को यही स्वीकार्य है कि पुरुषशरीरधारी मनुष्य ही स्त्रीवेद के उदय में नौवें गुणस्थान तक आध्यात्मिक विकास कर सकता है, इसलिए उन्हें स्त्रीमुक्ति कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकती।

उक्त विद्वद्वर का यह कथन भी तथ्य के विपरीत है कि सातवीं शती के पूर्व स्त्रीमुक्ति के विवाद का दोनों परम्पराओं में कोई संकेत नहीं है। (जै.ध.या.स./पृ.८८)। द्वितीय अध्याय में सोदाहरण स्पष्ट किया गया है कि प्रथम शती ई० के बोटिक शिवभूति ने, जो श्वेताम्बरत्व छोड़कर दिगम्बर हो गया था, सवस्त्रमुक्ति का सर्वथा विरोध किया था, जिसमें स्त्रीमुक्ति का विरोध भी गर्भित था। उसने अपने सम्प्रदाय में केवल दो पुरुषों को दीक्षित किया था, स्त्रियों में अपनी बहन उत्तरा तक को दीक्षा नहीं दी। यह बात तो पूर्व श्वेताम्बराचार्यों ने भी स्वीकार की है कि शिवभूति स्त्रीमुक्ति-विरोधी था। तथा ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी के आचार्य कुन्दकुन्द ने, प्रथम शती ई० के 'भगवती आराधना' और 'मूलाचार' के कर्त्ताओं ने एवं पाँचवीं शती ई० के आचार्य पूज्यपाद ने अपने ग्रन्थों में स्त्रीमुक्ति का निषेध किया है।

इस तरह कसायपाहुड में स्त्रीमुक्ति का समर्थन नहीं है, अत: वह दिगम्बरग्रन्थ ही है, स्त्रीमुक्ति-समर्थक श्वेताम्बर, यापनीय अथवा श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है।

१३

आचार्य-मतभेद परम्पराभेद का प्रमाण नहीं

यापनीयपक्ष

उक्त विद्वान लिखते हैं—"कसायपाहुड के चूर्णिसूत्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि **आर्यगुणन्धर, आर्यमंक्षु** और **आर्यनागहस्ती** ने कसायपाहुड का जिस रूप में प्रतिपादन किया था, उससे अनेक स्थानों पर चूर्णिकार यतिवृषभ और जयधवला-टीकाकार मतभेद रखते थे। उदाहरणार्थ, ग्रन्थ के अर्थाधिकारों का मूलग्रन्थकार का वर्गीकरण चूर्णिसूत्र के कर्त्ता यतिवृषभ एवं जयधवलाकार के वर्गीकरण से भिन्न है। इससे यह फलित होता है कि मूलग्रन्थकार, चूर्णिकार और टीकाकार की परम्पराएँ एक नहीं है। जहाँ मूल ग्रन्थकार श्वेताम्बर और यापनीयों के पूर्वज उत्तरभारत की अविभक्त निर्ग्रन्थधारा के प्रतिनिधि हैं, वहाँ चूर्णिकार यापनीय और टीकाकार दिगम्बर हैं। चूर्णिकार को यापनीय मानने का कारण यह है कि यापनीय ही अविभक्त उत्तरभारतीय आगमिक साहित्य के उत्तराधिकारी रहे हैं।" (जै.ध.या.स./पृ.८८)।

दिगम्बरपक्ष

इस विषय में मैं और कुछ न कहकर उन्हीं मान्य विद्वान् के एक अन्य वक्तव्य की ओर ध्यान आकृष्ट करता हूँ। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"डॉ० कुसुम पटोरिया ने श्वेताम्बर अथवा दिगम्बर-परम्परा की प्रचलित मान्यताओं से मतभेद रखनेवाले सभी ग्रन्थों को यापनीयपरम्परा से जोड़ने का प्रयत्न किया है। --- किन्तु मेरी दृष्टि में मात्र यही आधार उचित नहीं है, क्योंकि श्वेताम्बर और अचेलक, दोनों ही परम्पराओं के अवान्तर संघों, गणों या गच्छों में भी, न केवल आचार के सामान्य प्रश्नों को लेकर, अपितु ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा, कर्मसिद्धान्त और सृष्टिमीमांसा की सूक्ष्म विवेचनाओं के सम्बन्ध में अनेक अवान्तर मतभेद देखे जाते हैं। मात्र यही नहीं, एक ही ग्रन्थ में दो भिन्न-भिन्न मान्यताओं के निर्देश भी प्राप्त होते हैं। अतः मात्र इसी आधार पर कि उस ग्रन्थ की मान्यताएँ प्रचलित श्वेताम्बर और दिगम्बर-परम्परा से भिन्न हैं, उसे यापनीय नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि श्वेताम्बर और दिगम्बर-परम्पराओं में भी अनेक अवान्तर मतभेद रहे हैं। उदाहरण के रूप में सिद्धसेन और जिनभद्र केवलज्ञान और केवलदर्शन के क्रमभाव या यौगपद्य को लेकर मतभेद रखते हैं। षट्खण्डागम की धवलाटीका में भी दिगम्बरपरम्परा के ही अनेक अवान्तर मतभेदों की विस्तृत चर्चा है। कसायपाहुडसुत्त और उसकी चूर्णि में भी ऐसे मतभेद देखे जाते हैं। अतः प्रचलित मान्यताओं से मतभेदमात्र किसी ग्रन्थ के यापनीय होने का आधार नहीं है।" (जै.ध.या.स./पृ.८१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मान्य विद्वान् के अपने ही इस वक्तव्य से उनका प्रथम वक्तव्य खण्डित हो जाता है और सिद्ध हो जाता है कि कसायपाहुड के कर्त्ता और उसके चूर्णिसूत्रकार तथा जयधवलाकार के बीच विषयविशेष पर मतभेद रहते हुए भी सम्प्रदायभेद नहीं था। अत: मान्य विद्वान् ने इस मतभेद से जो यह निष्कर्ष निकाला है कि मूलग्रन्थकार उत्तरभारत की उस अविभक्त निर्ग्रन्थ परम्परा के प्रतिनिधि हैं, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों की पूर्वज थी, तथा चूर्णिकार यापनीय और टीकाकार दिगम्बर हैं, वह मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

यापनीयपक्षी मान्य विद्वान् ने अपने प्रथम वक्तव्य में आचार्य **गुणधर** के स्थान में अपने ही मन से आर्य **गुणन्धर** शब्द का प्रयोग कर इतिहास को प्रदूषित करने का प्रयास किया है, जबकि उन्होंने स्वयं एक श्वेताम्बरपट्टावली में किसी गुणन्धर नाम के आचार्य के उल्लेख की चर्चा करते हुए पट्टावली को अविश्वसनीय और पर्याप्त परवर्ती कहकर उनके कसायपाहुड के कर्त्ता होने की संभावना को निरस्त कर दिया था। पता नहीं मान्य विद्वान् ने यहाँ क्यों उन्हें पुन: गुणधर के स्थान में स्थापित कर दिया?

एक बात और है, धवला और जयधवला में षट्खण्डागम के उपदेश से कषायप्राभृत के उपदेश को भिन्न बतलाया गया है।[१४] इस कारण भी यह भ्रम पैदा करने का प्रयास किया गया है कि ये दोनों भिन्न सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं।

इस भ्रम के निवारणार्थ माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं–"एक ही आम्नाय में होनेवाले आचार्यों में बहुधा मतभेद पाया जाता है और इस मतभेद पर से मात्र इतना ही निष्कर्ष निकाला जाता है कि उन आचार्यों की गुरुपरम्पराएँ भिन्न थीं। जिसको गुरुपरम्परा से जो उपदेश प्राप्त हुआ, उसने उसी को अपनाया। कर्मशास्त्रविषयक इन मतभेदों की चर्चा दोनों ही सम्प्रदायों में बहुतायत से पायी जाती है। अत: भिन्न उपदेश कहे जाने से भी यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि षट्खण्डागम से कषायप्राभृत भिन्न सम्प्रदाय का ग्रन्थ है।" (क.पा. / भा.१ / प्रस्ता./ पृ.६६)

१४
'वाचक' पद का सम्बन्ध किसी परम्परा से नहीं

पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने एक अन्य तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है, वह यह कि जयधवलाकार ने आचार्य गुणधर को वाचक कहा है। और

१४. देखिए, कसायपाहुड / भा.१ / प्रस्तावना / पृ.६४।

श्वेताम्बरपरम्परा में उमास्वाति वाचकवंश के बतलाये गये हैं। इस आधार पर श्वेताम्बरपक्ष की ओर से यह भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया गया कि गुणधर श्वेताम्बर थे। (क.पा./भा.१ /प्रस्ता./ पृ.६४-६५)।

वीरसेन स्वामी ने धवला की टीका में **वाचक** का अर्थ **पूर्वविद्** किया है।[१५] इससे प्रतीत होता है कि गुणधर पूर्वविदों की परम्परा में से थे।[१६] इस प्रमाण के आधार पर माननीय पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री उपर्युक्त भ्रम का निवारण करते हुए लिखते हैं—''वाचकवंश का सम्बन्ध भले ही श्वेताम्बरपरम्परा से रहा हो, किन्तु वाचकपद का सम्बन्ध किसी एक परम्परा से नहीं था। यदि ऐसा होता तो जयधवलाकार गुणधर को वाचक और अपने एक गुरु आर्यनन्दी को महावाचक पद से अलंकृत न करते। अतः मात्र वाचक कहे जाने से गुणधराचार्य को श्वेताम्बरपरम्परा का विद्वान् नहीं कहा जा सकता।'' (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ.६५)।

१५

मोहनीय के ५२ नाम एकान्त-अचेलमार्गी-मूलसंघ की विरासत

यापनीयपक्ष

कसायपाहुड (भाग २) के 'व्यञ्जन-अर्थाधिकार' में क्रोध, मान, माया और लोभ के ५२ पर्यायवाचियों का उल्लेख है। यथा—

कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण कलह वड्ढी य।
झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति॥ ८६॥

माण मद दप्प थंभो उक्कास पगास तध समुक्कस्सो।
अत्तुक्करिसो परिभव उस्सिद दसलक्खणो माणो॥ ८७॥

माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा।
गहणं मणुण्णमग्गण कक्क कुहक गूहणच्छण्णो॥ ८८॥

कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य।
णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य॥ ८९॥

सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्जजिब्भा य।
लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्ठिया भणिदा॥ ९०॥

---

१५. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / भा.१ / पृ.२३।
१६. वही / भा.१ / पृ.२४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद, ये दस क्रोध के एकार्थक नाम हैं।" (८६)।

"मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त, ये दश नाम मान कषाय के हैं।" (८७)।

"माया, सातियोग, निकृति, वंचना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न, ये ग्यारह मायाकषाय के वाचक है।" (८८)।

"काम, राग, निदान, छन्द, स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शास्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा, ये बीस लोभ के एकार्थक नाम कहे गये हैं।" (८९-९०)।

ये ही पर्यायवाची श्वेताम्बरपरम्परा के **भगवतीसूत्र** के बारहवें शतक और **समवायांग** में भी हैं—

"मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए।

"माणे मदे दप्पे थंभे अत्तुक्कोसे गव्वे परपरिवाए उक्कोसे अवक्कोसे उन्नए उन्नामे।

"माया उवही नियडी बलए गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे कूडे जिम्हे किब्बिसए अणायरणया, गूहणया वंचणया पलिकुंचणया सातिजोगे।

"लोभे इच्छा मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा नंदी रागे॥"[१७]

कसायपाहुड और भगवतीसूत्र-समवायांग में इन पर्यायवाची नामों का साम्य बतलाकर उक्त यापनीयपक्षधर विद्वान् ने यह सिद्ध करना चाहा है कि कसायपाहुड उस परम्परा का ग्रन्थ है, जिसमें समवायांग, भगवतीसूत्र आदि की रचना हुई, अर्थात् श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ है।

दिगम्बरपक्ष

जैसा कि पूर्व में सिद्ध किया गया है, श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा कपोल-कल्पित है। अतः कसायपाहुड को कपोलकल्पित परम्परा का ग्रन्थ कहना दुहरी कपोलकल्पना है।

---

१७. समवायांग / समवाय ५२ (जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय / पृ.८९)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वस्तुतः मोहनीय के बावन पर्यायनाम एकान्त अचेलमुक्तिवादी मूलसंघ की विरासत हैं, जिसके उत्तराधिकारी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय हैं। वहीं से वे दिगम्बर-ग्रन्थ कसायपाहुड और श्वेताम्बरग्रन्थ समवायांग एवं भगवतीसूत्र में आये हैं।

१६
अपना पूर्वमत स्वयं के द्वारा ही मिथ्या घोषित

यापनीयपक्षपोषक उक्त विद्वान् ने आगे चलकर स्वयं अपना यह विचार बदल दिया है कि कसायपाहुड उत्तरभारतीय श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ है। वे लिखते हैं—

"गुणस्थानसिद्धान्त के विकास की दृष्टि से यह मानना होगा कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती कर्मप्रकृतियों के विशिष्ट ज्ञाता थे, वे कसायपाहुड के वर्तमान स्वरूप के प्रस्तोता नहीं थे। मात्र यही माना जा सकता है कि कसायपाहुड की रचना का आधार उनकी कर्मसिद्धान्त-सम्बन्धी अवधारणाएँ हैं, क्योंकि आर्यमंक्षु और नागहस्ती का काल ई० सन् की दूसरी शताब्दी है। यदि हम कसायपाहुड में प्रस्तुत गुणस्थान की अवधारणा पर विचार करें, तो ऐसा लगता है कि कसायपाहुड की रचना गुणस्थानसिद्धान्त की अवधारणा के निर्धारित होने के बाद हुई है। अर्धमागधी आगमसाहित्य में, यहाँ तक कि प्रज्ञापना जैसे विकसित आगम और तत्त्वार्थसूत्र में भी गुणस्थान का सिद्धान्त सुव्यवस्थित रूप नहीं ले पाया था, जब कि कसायपाहुड गुणस्थानसिद्धान्त के सुव्यवस्थित रूप लेने के बाद ही रचा गया है। अतः यदि तत्त्वार्थ का रचनाकाल ईसा की दूसरी-तीसरी शती है तो उसका काल ईसा की तीसरी-चौथी शती मानना होगा।" (जै.ध.या.स./पृ.११२)।

इस प्रकार यापनीयपक्षी विद्वान् ने अपने इस दूसरे मत से पहले मत को कि कसायपाहुड उत्तरभारत की अविभक्त-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा (श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा) का ग्रन्थ है, स्वयं ही मिथ्या सिद्ध कर दिया है। और यह वे पहले ही घोषित कर चुके थे कि वह यापनीयपरम्परा में निर्मित नहीं हुआ है[१८] तथा उपलब्ध कसायपाहुड शौरसेनी प्राकृत में है, इसलिए उसका श्वेताम्बरग्रन्थ होना भी वे अस्वीकार कर चुके हैं।[१९] इसके अतिरिक्त अर्धमागधी में रचित कसायपाहुड के किसी काल में विद्यमान होने का कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार अन्यथानुपपत्ति प्रमाण से 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के यापनीयपक्षधर लेखक ही उसे दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध कर देते हैं।

---

१८. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ.८७।
१९. वही/पृ.८५।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद, ये दस क्रोध के एकार्थक नाम हैं।" (८६)।

"मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त, ये दश नाम मान कषाय के हैं।" (८७)।

"माया, सातियोग, निकृति, वंचना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न, ये ग्यारह मायाकषाय के वाचक है।" (८८)।

"काम, राग, निदान, छन्द, स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शास्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा, ये बीस लोभ के एकार्थक नाम कहे गये हैं।" (८९-९०)।

ये ही पर्यायवाची श्वेताम्बरपरम्परा के **भगवतीसूत्र** के बारहवें शतक और **समवायांग** में भी हैं—

"मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए।

"माणे मदे दप्पे थंभे अत्तुक्कोसे गव्वे परपरिवाए उक्कोसे अवक्कोसे उन्नए उन्नामे।

"माया उवही नियडी बलए गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे कूडे जिम्हे किब्बिसए अणायरणया, गूहणया वंचणया पलिकुंचणया सातिजोगे।

"लोभे इच्छा मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा नंदी रागे॥"[१७]

कसायपाहुड और भगवतीसूत्र-समवायांग में इन पर्यायवाची नामों का साम्य बतलाकर उक्त यापनीयपक्षधर विद्वान् ने यह सिद्ध करना चाहा है कि कसायपाहुड उस परम्परा का ग्रन्थ है, जिसमें समवायांग, भगवतीसूत्र आदि की रचना हुई, अर्थात् श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ है।

दिगम्बरपक्ष

जैसा कि पूर्व में सिद्ध किया गया है, श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा कपोल-कल्पित है। अतः कसायपाहुड को कपोलकल्पित परम्परा का ग्रन्थ कहना दुहरी कपोलकल्पना है।

---

१७. समवायांग / समवाय ५२ (जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय / पृ.८९)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वस्तुतः मोहनीय के बावन पर्यायनाम एकान्त अचेलमुक्तिवादी मूलसंघ की विरासत हैं, जिसके उत्तराधिकारी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय हैं। वहीं से वे दिगम्बर-ग्रन्थ कसायपाहुड और श्वेताम्बरग्रन्थ समवायांग एवं भगवतीसूत्र में आये हैं।

१६

अपना पूर्वमत स्वयं के द्वारा ही मिथ्या घोषित

यापनीयपक्षपोषक उक्त विद्वान् ने आगे चलकर स्वयं अपना यह विचार बदल दिया है कि कसायपाहुड उत्तरभारतीय श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ है। वे लिखते हैं—

''गुणस्थानसिद्धान्त के विकास की दृष्टि से यह मानना होगा कि आर्यमंक्षु और नागहस्ती कर्मप्रकृतियों के विशिष्ट ज्ञाता थे, वे कसायपाहुड के वर्तमान स्वरूप के प्रस्तोता नहीं थे। मात्र यही माना जा सकता है कि कसायपाहुड की रचना का आधार उनकी कर्मसिद्धान्त-सम्बन्धी अवधारणाएँ हैं, क्योंकि आर्यमंक्षु और नागहस्ती का काल ई० सन् की दूसरी शताब्दी है। यदि हम कसायपाहुड में प्रस्तुत गुणस्थान की अवधारणा पर विचार करें, तो ऐसा लगता है कि कसायपाहुड की रचना गुणस्थानसिद्धान्त की अवधारणा के निर्धारित होने के बाद हुई है। अर्धमागधी आगमसाहित्य में, यहाँ तक कि प्रज्ञापना जैसे विकसित आगम और तत्त्वार्थसूत्र में भी गुणस्थान का सिद्धान्त सुव्यवस्थित रूप नहीं ले पाया था, जब कि कसायपाहुड गुणस्थानसिद्धान्त के सुव्यवस्थित रूप लेने के बाद ही रचा गया है। अतः यदि तत्त्वार्थ का रचनाकाल ईसा की दूसरी-तीसरी शती है तो उसका काल ईसा की तीसरी-चौथी शती मानना होगा।'' (जै.ध.या.स./पृ.११२)।

इस प्रकार यापनीयपक्षी विद्वान् ने अपने इस दूसरे मत से पहले मत को कि कसायपाहुड उत्तरभारत की अविभक्त-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा (श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा) का ग्रन्थ है, स्वयं ही मिथ्या सिद्ध कर दिया है। और यह वे पहले ही घोषित कर चुके थे कि वह यापनीयपरम्परा में निर्मित नहीं हुआ है[१८] तथा उपलब्ध कसायपाहुड शौरसेनी प्राकृत में है, इसलिए उसका श्वेताम्बरग्रन्थ होना भी वे अस्वीकार कर चुके हैं।[१९] इसके अतिरिक्त अर्धमागधी में रचित कसायपाहुड के किसी काल में विद्यमान होने का कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार अन्यथानुपपत्ति प्रमाण से 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के यापनीयपक्षधर लेखक ही उसे दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध कर देते हैं।

---

१८. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ.८७।
१९. वही/पृ.८५।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

चतुर्थ प्रकरण

कसायपाहुड श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं

श्वेताम्बरमुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी ने कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बरीय ग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। उसका सप्रमाण खण्डन सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने एक लेख में किया है, जो भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित (जयधवलासहित) 'कसायपाहुड' (द्वितीय संस्करण) के १२वें भाग में पृष्ठ २७ से ४३ तक 'विषयपरिचय' शीर्षक के अन्तर्गत निबद्ध है। उसे मैं शीर्षकसहित ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ—

कषायप्राभृत दिगम्बर आचार्यों की ही कृति है

लेखक : सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री

श्वेताम्बर-मुनि श्री गुणरत्नविजय जी ने कर्मसाहित्य तथा अन्य कतिपय विषयों के अनेक ग्रंथों की रचना की है। उनमें से एक **खवगसेढी** ग्रन्थ है। इसकी रचना में अन्य ग्रंथों के समान कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि का भरपूर उपयोग हुआ है। वस्तुतः श्वेताम्बरपरम्परा में ऐसा कोई एक अन्य ग्रन्थ नहीं है, जिसमें क्षपकश्रेणी का सांपोपांग विवेचन उपलब्ध होता हो। श्री मुनि गुणरत्नविजय जी ने अपने सम्पादकीय में इस तथ्य को स्वयं इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"समाप्त थयावाद क्षपकश्रेणी ने विषय संस्कृतमा गद्यरूपे लखवो शरूकर्यो। ४थी ५ हजार श्लोक प्रमाण लखाण थयावाद मने विचार आव्यो के जुदा ग्रंथोंमां छूटी छपाई वर्णवायेली क्षपकश्रेणी व्यवस्थित कोई एक ग्रंथमां जोवामा आवती नथी। जैनशासनमां महत्त्वनी गणती 'क्षपकश्रेणी' ना जुदा ग्रन्थोंमां संगृहीत विषयनो प्राकृतभाषामां स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार थाय, तो ते मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओं ने घणो लाभदायी बने।"

उनके इस वक्तव्य से स्पष्ट ज्ञान होता है कि इस ग्रंथ के प्रणयन में जहाँ उन्हें कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि का भरपूर सहारा लेना पड़ा, वहाँ उनके सहयोगी तथा प्रस्तावना-लेखक श्वे० मुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को अपने मनगढ़न्त तर्कों द्वारा श्वेताम्बर-परम्परा का सिद्ध करने का लोभ संवरण न कर सके। आगे हम उनके उन कल्पित तर्कों पर संक्षेप में क्रम से विचार करेंगे, जिनके आधार से उन्होंने इन दोनों को श्वेताम्बरपरम्परा का सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है।

उनमें भी सर्वप्रथम हम मूल कषायप्राभृत के ग्रंथ-परिमाण पर विचार करेंगे, क्योंकि श्वेताम्बर मुनि हेमचन्द्रविजय जी ने अपनी प्रस्तावना ८ पृष्ठ २९ में कषायप्राभृत के पन्द्रह अधिकारों में विभक्त १८० गाथाओं के अतिरिक्त शेष ५३ गाथाओं के प्रक्षिप्त होने की सम्भावना व्यक्त की है। किन्तु उसके चूर्णिसूत्रों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि आचार्य श्री यतिवृषभ के समक्ष पन्द्रह अर्थाधिकारों में विभक्त १८० सूत्रगाथाओं के समान कषायप्राभृत के अंगरूप से उक्त ५३ सूत्र गाथायें भी रही हैं। इन पर कहीं उन्होंने चूर्णिसूत्रों की रचना की है और कहीं उन्हें प्रकरण के अनुसार सूत्ररूप में स्वीकार किया है।

जिनके विषय में श्वेताम्बर मुनि हेमचन्द्र जी ने प्रक्षिप्त होने की सम्भावना व्यक्त की है, उनमें से '**पुव्वम्मि पंचमम्मि दु**' (क.पा./भाग १/गा.१/पृ.९) यह प्रथम सूत्र गाथा है, जो ग्रन्थ के नामनिर्देश के साथ उसकी प्रामाणिकता को सूचित करती है। इस पर चूर्णिसूत्र है—

"**णाणप्पवादस्स पुव्वस्स दसमस्स वत्थुस्स तदियस्स पाहुडस्स**" इत्यादि। (क.पा./भाग१/पृ.११)।

अब यदि इसे कषायप्राभृत की मूलगाथा नहीं स्वीकार किया जाता है तो—

१. एक तो ग्रंथ का नामनिर्देश आदि किये बिना ग्रन्थ के १५ अर्थाधिकारों से कुछ का निर्देश करनेवाली नं. १३ की '**पेज्ज-दोसविहत्ती**' इत्यादि सूत्रगाथा (क.पा./भाग १/पृ.१६३) से हमें ग्रन्थ का प्रारंभ मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जो संगत प्रतीत नहीं होता।

२. दूसरे उक्त प्रथम गाथा के अभाव में नं. १३ की उक्त सूत्रगाथा के पूर्व चूर्णिसूत्रों द्वारा पाँच प्रकार के उपक्रम के साथ '**अत्थाहियारो पण्णारसविहो**' (क.पा./भाग १/पृ.१३६) इस प्रकार का निर्देश भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उक्त प्रकार से चूर्णिसूत्रों की रचना तभी संगत प्रतीत होती है, जब उनके रचे जानेवाले ग्रन्थ का मूल या चूर्णि में नामोल्लेख किया गया हो।

इस प्रकार सूक्ष्मता से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि '**पुव्वम्मि पंचमम्मि दु**' इत्यादि गाथा प्रक्षिप्त न होकर १८० गाथाओं के समान ग्रन्थ की मूल गाथा ही है।

दूसरी सूत्रगाथा है '**गाहासदे असीदे**' इत्यादि। (क.पा./भा.१/गा.२/पृ.१३९)। इसके पूर्व पाँच प्रकार के उपक्रम के भेदों का निर्देश करते हुए अन्तिम चूर्णिसूत्र है—

"**अत्थाहियारो पण्णारसविहो**" (क.पा./भा.१/पृ.१६९)।

चतुर्थ प्रकरण

कसायपाहुड श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं

श्वेताम्बरमुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी ने कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बरीय ग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। उसका सप्रमाण खण्डन सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने एक लेख में किया है, जो भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित (जयधवलासहित) 'कसायपाहुड' (द्वितीय संस्करण) के १२वें भाग में पृष्ठ २७ से ४३ तक 'विषयपरिचय' शीर्षक के अन्तर्गत निबद्ध है। उसे मैं शीर्षकसहित ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ—

कषायप्राभृत दिगम्बर आचार्यों की ही कृति है

लेखक : सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री

श्वेताम्बर-मुनि श्री गुणरत्नविजय जी ने कर्मसाहित्य तथा अन्य कतिपय विषयों के अनेक ग्रंथों की रचना की है। उनमें से एक **खवगसेढी** ग्रन्थ है। इसकी रचना में अन्य ग्रंथों के समान कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि का भरपूर उपयोग हुआ है। वस्तुतः श्वेताम्बरपरम्परा में ऐसा कोई एक अन्य ग्रन्थ नहीं है, जिसमें क्षपकश्रेणी का सांपोपांग विवेचन उपलब्ध होता हो। श्री मुनि गुणरत्नविजय जी ने अपने सम्पादकीय में इस तथ्य को स्वयं इन शब्दों में स्वीकार किया है—

''समाप्त थयावाद क्षपकश्रेणी ने विषय संस्कृतमा गद्यरूपे लखवो शरूकर्यो। ४थी ५ हजार श्लोक प्रमाण लखाण थयावाद मने विचार आव्यो के जुदा ग्रंथोंमां छूटी छपाई वर्णवायेली क्षपकश्रेणी व्यवस्थित कोई एक ग्रंथमां जोवामा आवती नथी। जैनशासनमां महत्त्वनी गणती 'क्षपकश्रेणी' ना जुदा ग्रन्थोंमां संगृहीत विषयनो प्राकृतभाषामां स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार थाय, तो ते मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओं ने घणो लाभदायी बने।''

उनके इस वक्तव्य से स्पष्ट ज्ञान होता है कि इस ग्रंथ के प्रणयन में जहाँ उन्हें कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि का भरपूर सहारा लेना पड़ा, वहाँ उनके सहयोगी तथा प्रस्तावना-लेखक श्वे० मुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को अपने मनगढ़न्त तर्कों द्वारा श्वेताम्बर-परम्परा का सिद्ध करने का लोभ संवरण न कर सके। आगे हम उनके उन कल्पित तर्कों पर संक्षेप में क्रम से विचार करेंगे, जिनके आधार से उन्होंने इन दोनों को श्वेताम्बरपरम्परा का सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है।

उनमें भी सर्वप्रथम हम मूल कषायप्राभृत के ग्रंथ-परिमाण पर विचार करेंगे, क्योंकि श्वेताम्बर मुनि हेमचन्द्रविजय जी ने अपनी प्रस्तावना ८ पृष्ठ २९ में कषायप्राभृत के पन्द्रह अधिकारों में विभक्त १८० गाथाओं के अतिरिक्त शेष ५३ गाथाओं के प्रक्षिप्त होने की सम्भावना व्यक्त की है। किन्तु उसके चूर्णिसूत्रों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि आचार्य श्री यतिवृषभ के समक्ष पन्द्रह अर्थाधिकारों में विभक्त १८० सूत्रगाथाओं के समान कषायप्राभृत के अंगरूप से उक्त ५३ सूत्र गाथायें भी रही हैं। इन पर कहीं उन्होंने चूर्णिसूत्रों की रचना की है और कहीं उन्हें प्रकरण के अनुसार सूत्ररूप में स्वीकार किया है।

जिनके विषय में श्वेताम्बर मुनि हेमचन्द्र जी ने प्रक्षिप्त होने की सम्भावना व्यक्त की है, उनमें से '**पुव्वम्मि पंचमम्मि दु**' (क.पा./भाग १/गा.१/पृ.९) यह प्रथम सूत्र गाथा है, जो ग्रन्थ के नामनिर्देश के साथ उसकी प्रामाणिकता को सूचित करती है। इस पर चूर्णिसूत्र है—

"**णाणप्पवादस्स पुव्वस्स दसमस्स वत्थुस्स तदियस्स पाहुडस्स**" इत्यादि। (क.पा./भाग१/पृ.११)।

अब यदि इसे कषायप्राभृत की मूलगाथा नहीं स्वीकार किया जाता है तो—

१. एक तो ग्रंथ का नामनिर्देश आदि किये बिना ग्रन्थ के १५ अर्थाधिकारों से कुछ का निर्देश करनेवाली नं. १३ की '**पेज्ज-दोसविहत्ती**' इत्यादि सूत्रगाथा (क.पा./भाग १/पृ.१६३) से हमें ग्रन्थ का प्रारंभ मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जो संगत प्रतीत नहीं होता।

२. दूसरे उक्त प्रथम गाथा के अभाव में नं. १३ की उक्त सूत्रगाथा के पूर्व चूर्णिसूत्रों द्वारा पाँच प्रकार के उपक्रम के साथ '**अत्थाहियारो पण्णारसविहो**' (क.पा./भाग १/पृ.१३६) इस प्रकार का निर्देश भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उक्त प्रकार से चूर्णिसूत्रों की रचना तभी संगत प्रतीत होती है, जब उनके रचे जानेवाले ग्रन्थ का मूल या चूर्णि में नामोल्लेख किया गया हो।

इस प्रकार सूक्ष्मता से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि '**पुव्वम्मि पंचमम्मि दु**' इत्यादि गाथा प्रक्षिप्त न होकर १८० गाथाओं के समान ग्रन्थ की मूल गाथा ही है।

दूसरी सूत्रगाथा है '**गाहासदे असीदे**' इत्यादि। (क.पा./भा.१/गा.२/पृ.१३९)। इसके पूर्व पाँच प्रकार के उपक्रम के भेदों का निर्देश करते हुए अन्तिम चूर्णिसूत्र है—

"**अत्थाहियारो पण्णारसविहो**" (क.पा./भा.१/पृ.१६९)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यह वही गाथा है जिसके आधार से यह कहा जाता है कि कषायप्राभृत की कुल १८० सूत्रगाथाएँ हैं। अब यदि इसे प्रक्षिप्त माना जाता है, तो ऐसे कई प्रश्न उपस्थित होते हैं, जिनका सम्यक् समाधान इसे मूल गाथा मानने पर ही होता है। यथा—

१. प्रथम तो गुणधर आचार्य को कषायप्राभृत के १५ ही अर्थाधिकार इष्ट रहे हैं, इसे जानने का एक मात्र उक्त सूत्रगाथा ही साधन है, अन्य नहीं। क्रमांक १३ और १४ सूत्रगाथाएँ मात्र अर्थाधिकारों का नामनिर्देश करती हैं। वे १५ ही हैं, इसका ज्ञान मात्र इसी सूत्रगाथा से होता है और तभी क्रमांक १३ और १४ सूत्रगाथाओं के बाद "**अत्थाहियारो पण्णारसविहो अण्णेण पयारेण वुच्चदि**" (क.पा. /भाग १ /पृ.१६९) इस प्रकार चूर्णिसूत्र की रचना उचित प्रतीत होती है।

२. दूसरे उक्त गाथा से ही हम यह जान पाते हैं कि कषायप्राभृत की सब गाथाएँ उसके १५ अर्थाधिकारों के विवेचन में विभक्त नहीं है। किन्तु उनमें से कुल १८० गाथाएँ ही ऐसी हैं, जो उनके विवेचन में विभक्त हैं। उक्त गाथा प्रकृत का विधान तो करती है, अन्य का निषेध नहीं करती। यहाँ प्रकृत १५ अर्थाधिकार हैं। उनमें १८० सूत्रगाथाएँ विभक्त हैं। इतना मात्र निर्देश करने के लिए आचार्य गुणधर ने इस सूत्रगाथा की रचना की है, १५ अर्थाधिकारों से सम्बद्ध गाथाओं का निषेध करने के लिए नहीं।

इस प्रकार इस दूसरी सूत्रगाथा के भी ग्रन्थ का मूल अंग सिद्ध हो जाने पर इससे आगे की क्रमांक ३ से लेकर १२ तक की १० सूत्रगाथाएँ भी कषायप्राभृत का मूल अंग सिद्ध हो जाती हैं, क्योंकि उनमें १५ अर्थाधिकारों-सम्बन्धी १८० गाथाओं में से किस अर्थाधिकार में कितनी सूत्रगाथाएँ आई हैं, एक मात्र इसी का विवेचन किया गया है, जो उक्त दूसरी सूत्रगाथा के उत्तरार्ध के अनुसार ही है। उसमें उन्हें सूत्रगाथा कहा भी गया है। यथा—

"**वोच्छामि सुत्तगाहा जइ गाहा जम्मि अत्थम्मि।**"

(क.पा. / भाग २ / गा.२)।

इसी प्रकार **संक्रम-अर्थाधिकार** (क.पा./भाग ८) में जो '**अट्ठावीस**' इत्यादि ३५ सूत्रगाथाएँ आई हैं, वे भी मूल कषायप्राभृत ही हैं और इसीलिए आचार्य यतिवृषभ ने उनके प्रारंभ में—

"**एत्तो पयडिट्ठाणसंकमो तत्थ पुव्वं गमणिज्जा सुत्तसमुक्कित्तणा।**" (क.पा. / भाग८/ पृ. ८१)।

इस चूर्णिसूत्र की रचनाकर और उनके अन्त में '**सुत्तसमुक्कित्तणाए समत्ताए---**' (क.पा./भाग८/पृ.८८) इस चूर्णिसूत्र की रचना कर उन्हें सूत्ररूप में स्वीकार किया है।

इस प्रकार सब मिलाकर उक्त ४७ सूत्रगाथाओं के मूल कषायप्राभृत सिद्ध हो जाने पर क्रमांक १० से लेकर '**आवलिय अणायारे**' (क.पा./भाग१/पृ.३०१) इत्यादि ६ सूत्र गाथाएँ भी मूल कषायप्राभृत ही सिद्ध होती हैं, क्योंकि यद्यपि आचार्य यतिवृषभ ने इनके प्रारम्भ में या अन्त में इनकी स्वीकृति-सूचक किसी चूर्णिसूत्र की रचना नहीं की है, फिर भी कषायप्राभृत पर दृष्टि डालने से और खासकर उपशमना-क्षपणा प्रकरण पर दृष्टि डालने से यही प्रतीत होता कि समग्रभाव से अल्पबहुत्व की सूचक इन सूत्रगाथाओं की रचना स्वयं गुणधर आचार्य ने ही की है। इसके लिए प्रथमोपशम-सम्यक्त्व-अर्थाधिकार की क्रमांक ९८ गाथा पर दृष्टिपात कीजिये।

इतने विवेचन से स्पष्ट है कि आचार्य यतिवृषभ को ये मूल कषायप्राभृत-रूप से ही इष्ट रही हैं। अतः सूत्रगाथाओं के संख्याविषयक उत्तरकालीन मतभेदों को प्रामाणिक मानना और इस विषय पर टीका-टिप्पणी करना उचित प्रतीत नहीं होता। आचार्य वीरसेन ने गाथाओं के संख्याविषयक मतभेद को दूर करने के लिए जो उत्तर दिया है, उसे इसी संदर्भ में देखना चाहिए।

इस प्रकार श्वे० मुनि हेमचन्द्रविजय जी ने कषायप्राभृत का परिमाण कितना है, इस पर **खवगसेढि** ग्रन्थ की अपनी प्रस्तावना मं जो आशंका व्यक्त की है, उसका निरसन कर अब आगे हम उनके उन कल्पित तर्कों पर सांगोपांग विचार करेंगे, जिसके आधार से उन्होंने कषायप्राभृत को श्वेताम्बर-आम्नाय का सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है।

१. इस विषय में उनका प्रथम तर्क है कि दिगम्बर ज्ञानभण्डार मूडबिद्री में कषायप्राभृत मूल और उसकी चूर्णि उपलब्ध हुई है, इसलिए वह दिगम्बर-आचार्य की कृति है, यह निश्चय नहीं किया जा सकता। (प्र.पृ.३०)।

किन्तु कषायप्राभृत मूल और उसकी चूर्णि, ये दोनों मूडबिद्री से दिगम्बर-ज्ञानभण्डार में उपलब्ध हुए हैं, मात्र इसीलिए तो किसी ने उन दोनों को दिगम्बर आचार्यों की कृति हैं, ऐसा नहीं कहा है। किन्तु उक्त दोनों के दिगम्बर-आचार्यों द्वारा प्रणीत होने के अनेक कारण हैं। उनमें से एक कारण एतद्विषयक ग्रन्थों में श्वेताम्बर-आचार्यों की शब्दयोजना-परिपाटी से भिन्न उसमें निबद्ध शब्दयोजना-परिपाटी है। यथा—

अ-श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गए सप्ततिकाचूर्णि, कर्मप्रकृति और पंचसंग्रह आदि में सर्वत्र जिस अर्थ में **दलिय** शब्द का प्रयोग हुआ है, उसी अर्थ में दिगम्बर

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्यों द्वारा लिखे गये कषायप्राभृत आदि में **पदेसग्ग** शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा—

"**तं वेयंतो बितियकिट्टीओ ततियकिट्टीओ य दलियं घेत्तूणं सुहुमसांपराइय-किट्टीओ करेइ।**" सप्ततिकाचूर्णि / पृ. ६६ अ. (देखो उक्त प्रस्तावना / पृ.३२)।

इच्छियठितिठाणाओ आवलियं लंघऊण **तद्दलियं**।
सव्वेसु वि निक्खिवइ ठितिठाणेसु उवरिमेसु॥ २॥
पंचसंग्रह / उद्वर्तनापवर्तनाकरण।

उवसंतद्धा अंते विहिणा ओकड्डियस्स **दलियस्स**।
अज्झवसाणणुरूवस्सुदओ तिसु एक्कयरयस्स॥२२॥
कर्मप्रकृति / उपशमनाकरण / पत्र १७।

अब दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों पर दृष्टि डालिए—

विदियादो पुण पढमा संखेज्जगुणा भवे **पदेसग्गे**।
विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया॥१७०॥
क.प्रा.मूल (क.पा. / भाग १५ / पृ.७३)।

"ताधे चेव लोभस्स विदियकिट्टीदो च तदियकिट्टीदो च **पदेसग्गमो**कड्डियूण सुहुमसांपराइयकिट्टीओ णाम करेदि।" कषायप्राभृतचूर्णि / मूल / पृ.८६२। (क.पा. / भाग १५ / गा.२०६ / चूर्णिसूत्र / पृ.२९५)।

"लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए **पदेसग्गं** बहुअं दिज्जदि।" (धवला / ष.ख. / पु.६ / पृ.३७८-३७९)।

आ—श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये कर्मप्रकृति और पंचसंग्रह में **अविरत** के लिए **अजय** या **अजत** शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु दिगम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये कषायप्राभृत और षट्खण्डागम में यह शब्द इस अर्थ में दृष्टिगोचर नहीं होता। इनके लिए कर्मप्रकृति (श्वे०) पर दृष्टिपात कीजिए—

वेयगसम्मद्दिट्ठी चरित्तमोहुवसमाइ चिट्ठंतो।
अजउ देशजई वा विरतो व विसोहिअद्धाए॥ २७॥
उपश.करण।

इसी प्रकार पञ्चसंग्रह में भी इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है।

इनके अतिरिक्त **वरिसवर**, **उव्वलण** आदि शब्द हैं, जो श्वेताम्बरपरम्परा के कार्मिक ग्रंथों में ही दृष्टिगोचर होते हैं, दिगम्बरपरम्परा के ग्रंथों में नहीं। ये कतिपय उदाहरण

हैं। इनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि, ये दोनों श्वेताम्बर आचार्यों की कृति न होकर दिगम्बर आचार्यों की ही अमर कृति हैं।

२. कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को श्वेताम्बर आचार्यों की कृति सिद्ध करने के लिए उनका दूसरा तर्क है कि दिगम्बर-आचार्यकृत ग्रन्थों पर श्वेताम्बर आचार्यों की टीकाएँ और श्वेताम्बर-आचार्यकृत ग्रन्थों पर दिगम्बर आचार्यों की टीकायें हैं आदि। उसी प्रकार कषायप्राभृत मूल तथा उसकी चूर्णि पर दिगम्बर-आचार्यों की टीका होने मात्र से उन्हें दिगम्बर आचार्यों की कृतिरूप से निश्चित नहीं किया जा सकता। (प्रस्तावना/पृ. ३०)।

यह उनका तर्क है। किन्तु श्वेताम्बर-आचार्यों द्वारा रचित कर्मग्रन्थों से कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि में वर्णित पदार्थभेद को स्पष्ट रूप से जानते हुए भी वे ऐसा असत् विधान कैसे करते हैं, इसका किसी को भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा।

"**मुद्रित कषायप्राभृत चूर्णिनी प्रस्तावनामां रजु थयेली मान्यतानी समीक्षा**" इस उपशीर्षक के अन्तर्गत उन्होंने पदार्थभेद के कतिपय उदाहरण स्वयं उपस्थित किये हैं। इन उदाहरणों को उपस्थित करते हुए उन्होंने कषायप्राभृत के साथ कषायप्राभृतचूर्णि, कर्मप्रकृतिचूर्णि, इन ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं। किन्तु श्वेताम्बर-पंचसंग्रह को दृष्टिपथ में लेने पर विदित होता है कि उक्त ग्रन्थ भी कषायप्राभृतचूर्णि का अनुसरण न कर कर्मप्रकृतिचूर्णि का ही अनुसरण करता है। यथा—

१. मिश्रगुणस्थान में सम्यक्त्व प्रकृति भजनीय है, इस मत का प्रतिपादन करनेवाली पञ्चसंग्रह के सत्कर्मस्वामित्व की गाथा इस प्रकार है—"**सासयणंमि नियमा सम्मं भज्जं दससु संतं**"॥ १३५॥

कर्मप्रकृतिचूर्णि से भी इसी अभिप्राय की पुष्टि होती है। (चूर्णिसत्ताधिकार/प.३५) [प्रदेशसंक्रम/प.९४]।

२. संज्वलन क्रोधादिका जघन्य प्रदेशसंक्रम अन्तिम समयप्रबद्ध का अन्यत्र संक्रम करते हुए क्षपकके अन्तिम समय में सर्वसंक्रम से होता है। यह कर्मप्रकृति-चूर्णिकार का मत है और यही मत श्वेताम्बर-पंचसंग्रह का भी है। यथा—

पुंसंजलणतिगाणं जहण्णजोगिस्स खवगसेढीए।
सगचरिमसमयबद्धं जं छुभइ सगंतिमे समए॥ ११९॥

३. प्रथमोपशम-सम्यग्दृष्टि के, सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय मिथ्यात्व के तीन पुंज होने पर एक आवलिकाल तक सम्यग्मिथ्यात्व का सम्यक्त्व में संक्रम नहीं होता,

यह कर्मप्रकृति-चूर्णिकार का मत है। पञ्चसंग्रह-प्रकृतिसंक्रम गाथा ११ की मलयगिरि-टीका से भी इसी मत की पुष्टि होती है। यथा—

''तस्यैव चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मणः आवलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न संक्रामति।'' (प्रकृति सं./पत्र १०)।

४. पुरुषवेद की पतद्ग्रहता कब नष्ट हो जाती है, इस विषय में कर्मप्रकृति-चूर्णिकार का जो मत है, उसी मत का निर्देश पंचसंग्रह की मलयगिरि-टीका में दृष्टिगोचर होता है। यथा—

''पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ द्व्यावालिकाशेषायां प्रागुक्तस्वरूपं आगालो व्यवच्छिद्यते, उदीरणा तु भवति, तस्मादेव समयादारभ्य षण्णां नोकषायाणां सत्कं दलिकं पुरुषवेदे न संक्रमयति।'' (पंच.चा.मो.ड./पत्र १९१)।

श्वे० पंचसंग्रह के ये उद्धरण हैं जो मात्र कर्मप्रकृतिचूर्णि का पूरी तरह अनुसरण करते हैं, किन्तु कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि का अनुसरण नहीं करते। इससे स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को श्वेताम्बर-आचार्यों ने कभी भी अपनी परम्परा की रचना-रूप में स्वीकार नहीं किया।

यहाँ हमारे इस बात के निर्देश करने का एक खास कारण यह भी है कि मलयगिरि के मतानुसार जिन पाँच ग्रन्थों का पंचसंग्रह में समावेश किया गया है, उनमें एक कषायप्राभृत भी है। यदि चन्द्रर्षिमहत्तर को पंचसंग्रह[२०] श्वेताम्बर-आचार्यों की कृतिरूप में स्वीकार होता, तो उन्होंने जैसे कर्मप्रकृति और चूर्णि को अपनी रचना में प्रमाणरूप से स्वीकार किया है, वैसे ही वे कषायप्राभृत और चूर्णि को भी प्रमाणरूप में स्वीकार करते। और ऐसी अवस्था में जिन-जिन स्थलों पर उन्हें कषायप्राभृत और कर्मप्रकृति में पदार्थभेद दृष्टिगोचर होता, उसका उल्लेख वे अवश्य करते। किन्तु उन्होंने ऐसा न कर मात्र कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णि का अनुसरण किया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि चन्द्रर्षिमहत्तर कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को श्वेताम्बर-परम्परा का नहीं स्वीकार करते रहे।

यहाँ हमने मात्र उन्हीं पाठों को ध्यान में रखकर चर्चा की है, जिनका निर्देश उक्त प्रस्तावनाकार ने किया है। इनके सिवाय और भी ऐसे पाठ हैं, जो कर्मप्रकृति और पंचसंग्रह में एक ही प्रकार की प्ररूपणा करते हैं। परन्तु कषायप्राभृत-चूर्णि में उनसे भिन्न प्रकार की प्ररूपणा दृष्टिगोचर होती है। उसके लिए हम एक उदाहरण

---

२०. 'पंचसंग्रह' के स्थान में 'कषायप्राभृत' होना चाहिए। लेखक ने असावधानी-वश 'पंचसंग्रह' लिख दिया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उद्वेलना-प्रकृतियों का देना इष्ट मानेंगे। यथा—

कषायप्राभृतचूर्णि में मोहनीय की मात्र दो प्रकृतियाँ उद्वेलना-प्रकृतियाँ स्वीकार की गई हैं : सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति। किन्तु पंचसंग्रह और कर्मप्रकृति में मोहनीय की उद्वेलना-प्रकृतियों की संख्या २७ है, यथा-दर्शनमोहनीय की ३, लोभसंज्वलन को छोड़कर १५ कषाय और ९ नोकषाय। कषायप्राभृतचूर्णि का पाठ—

"५८. **सम्मामिच्छत्तस्य जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स? चरिमसमयउव्वेल्लमाणस्स।**" (कसायपाहुडसुत्त/ पृ.१०१) "३६. **एवं चेव सम्मत्तस्स वि।**" (वही / पृ. १९०)।

पंचसंग्रह-प्रदेशसंक्रम का पाठ—

एवं उव्वलणासंकमेण नासेइ अविरओहारं।
सम्मोऽणमिच्छमीसे सछत्तीसऽनियट्टि जा माया॥ ७४॥

इसके सिवाय पञ्चसंग्रह के प्रदेशसंक्रमप्रकरण में एक यह गाथा भी आई है, जिससे भी उक्त विषय की पुष्टि होती है—

सम्म-मीसइं मिच्छो सुरदुगवेउव्विछक्कमेगिंदी।
सुहुमतसुच्चमणुदुगं अंतमुहुत्तेण अणियट्टी॥ ७५॥

इसमें बतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की मिथ्यादृष्टि जीव उद्वेलना करता है, पंचानवे प्रकृतियों की सत्तावाला एकेन्द्रिय जीव देवद्विक की उद्वेलना करता है, उसके बाद वही जीव वैक्रियषट्क की उद्वेलना करता है, सूक्ष्म त्रस अग्निकायिक और वायुकायिक जीव क्रम से उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक की उद्वेलना करता है तथा अनिवृत्तिबादर जीव एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्वोक्त ३६ प्रकृतियों की उद्वेलना करता है।

यहाँ पंचसंग्रह में निरूपित पाठ का उल्लेख किया है, कर्मप्रकृति की प्ररूपणा इससे भिन्न नहीं है। उदाहरणार्थ, जिस प्रकार पञ्चसंग्रह में अनन्तानुबन्धीचतुष्क की परिगणना उद्वेलना-प्रकृतियों में की गई है, उसी प्रकार कर्मप्रकृति में भी उन्हें उद्वेलना-प्रकृतियाँ स्वीकार किया है। कर्मप्रकृतिचूर्णि में प्रदेशसत्कर्म की सादि-अनादि प्ररूपणा करते हुए लिखा है—

"**अणंताणुबंधीणं खवियकम्मंसिगस्स उव्वलंतस्स एगठितिसेसजहन्नगं पदेससंतं एगसमयं होति।**"

यह एक उदाहरण है। अन्य प्रकृतियों के विषय में मूल और चूर्णि का आशय इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। किन्तु जैसा कि पूर्व में निर्देश कर आये हैं, कषायप्राभृत

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

और उसकी चूर्णि में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियों को छोड़कर मोहनीय की अन्य किसी प्रकृति की उद्वेलना-प्रकृतिरूप से परिगणना नहीं की गई है।

मतभेदसम्बन्धी दूसरा उदाहरण मिथ्यात्व के तीन भाग कौन जीव करता है, इससे सम्बन्ध रखता है। श्वेताम्बर-आचार्यों द्वारा लिखे गये कर्मप्रकृति और पंचसंग्रह में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि दर्शनमोह की उपशमना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्तिम समय में मिथ्यात्वकर्म को तीन भागों में विभक्त करता है। पंचसंग्रह-उपशमना-प्रकरण में कहा भी है—

उवरिमठिइअणुभागं तं च तिहा कुणइ चरिममिच्छुदए।
देसघाईणं सम्मं यरेणं मिच्छमीसाइं॥ २३॥

कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णि में लिखा है—

तं कालं बीयठिइं तिहाणुभागेण देसघाइ त्थ।
सम्मत्तं सम्मिस्सं मिच्छत्तं सव्वघाईओ॥ १९॥

चूर्णि—"चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठिसे काले उवसम्मदिट्ठी होहि त्ति ताहे बितीय-ट्ठितीते तिहा अणुभागं करेति।"

अब इन दोनों के प्रकाश में **कषायप्राभृतचूर्णि** पर दृष्टिपात कीजिए। इसमें प्रथम समयवर्ती प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव को मिथ्यात्व को तीन भागों में विभाजित करनेवाला कहा गया है। यथा—

"१०२. **चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ।** १०३.**ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा।** १०४.**पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मा-मिच्छत्ते बहुगं पदेसग्गं देदि।**" (कसायपाहुडसुत्त/पृ.६२८)।

यहाँ कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णि के विषय में संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गाथा में जो **तं कालं बीयठिइं** पाठ है, उसका चूर्णिकार ने जो अनुवाद किया है, वह मूलानुगामी नहीं है। मालूम पड़ता है चूर्णि का अनुकरणमात्र है। इतना अवश्य है कि कषायप्राभृतचूर्णि की वाक्यरचना पीछे के विषयविवेचन के अनुसन्धानपूर्वक की गई है और कर्मप्रकृतिचूर्णि की उक्त वाक्यरचना, इससे पूर्व की गाथा और उसकी चूर्णि के विषय विवेचन को ध्यान में रखकर की गई है। जहाँ तक कर्मप्रकृति की उक्त मूल गाथाओं पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उन दोनों गाथाओं द्वारा दिगम्बर आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मत का ही अनुसरण किया गया है, किन्तु उक्त चूर्णि और उसकी टीका मूल का अनुसरण न करती हुई श्वेताम्बर-

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मत का ही अनुसरण करती हैं। फिर भी यहाँ विसंगति की सूचक उल्लेखनीय बात इतनी है कि श्वेताम्बर आचार्यों ने उक्त टीकाओं में व अन्यत्र मिथ्यात्व के तीन हिस्से मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्तिम समय में स्वीकार करके भी उनमें मिथ्यात्व के द्रव्य का विभाग उसी समय न बतलाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय में स्वीकार किया है। यहाँ विसंगति यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्तिम समय में तो तीन भाग होने की व्यवस्था स्वीकार की गई है और उन तीनों भागों में कर्मपुंज का बँटवारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय से स्वीकार किया गया।

इस प्रकार इन दोनों परम्पराओं के प्रमाणों से स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि पर दिगम्बर आचार्यों ने टीका लिखी, केवल इसलिए हम उन्हें दिगम्बर-आचार्यों की कृति नहीं कहते, किन्तु उनकी शब्दयोजना, रचनाशैली और विषयविवेचन दिगम्बरपरम्परा के अन्य कार्मिक साहित्य के अनुरूप है, श्वेताम्बरपरम्परा के कार्मिक साहित्य के अनुरूप नहीं, इसलिए उन्हें हम दिगम्बर-आचार्यों की अमर कृति स्वीकार करते हैं।

अब आगे जिन चार उपशीर्षकों के अन्तर्गत उन्होंने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को श्वेताम्बर-आचार्यों की कृति सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है, उन पर क्रम से विचार करते हैं—

१

उन्होंने सर्वप्रथम "**दिगम्बरपरम्पराने अमान्य तेवा कषायप्राभृतचूर्णि अन्तर्गत पदार्थो**" इस उपशीर्षक के अन्तर्गत क० प्रा० चूर्णि के ऐसे दो उल्लेख उपस्थित किये हैं, जिन्हें वे स्वमति से दिगम्बरपरम्परा के विरुद्ध समझते हैं।

प्रथम उल्लेख है—"**सव्वलिंगेसु भज्जाणि।**"[२१] इस सूत्र का अर्थ है कि अतीत में सर्वलिंगों में बँधा हुआ कर्म क्षपक के सत्ता में विकल्प से होता है। इस पर

---

२१. (१३९) लेस्सा साद असादे च अभज्जा कम्म-सिप्प-लिंगे च।
खेत्तम्हि च भज्जाणि दु समाविभागे अभज्जाणि॥ १९२॥
चूर्णिसूत्र—"सव्वलिंगेसु च भज्जाणि।"
अनुवाद—"सब लिंगों में पूर्वबद्ध कर्म इस क्षपक के भजनीय हैं।"
जयधवला—"णिग्गंथलिंगवदिरित्तसेसाणं सलिंगग्गहणेसु वट्टमाणेण पुव्वबद्धाणि कम्माणि एदस्स खवगस्स भयणिज्जाणि त्ति वुत्तं होइ। किं कारणं? तावसादि-वेसग्गहणाणं सव्वजीवेसु संभवणियमाणुवलंभादो। तदो सिद्धमेदेसिं भयणिज्जतं।" अनुच्छेद ३८६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मत का ही अनुसरण करती हैं। फिर भी यहाँ विसंगति की सूचक उल्लेखनीय बात इतनी है कि श्वेताम्बर आचार्यों ने उक्त टीकाओं में व अन्यत्र मिथ्यात्व के तीन हिस्से मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्तिम समय में स्वीकार करके भी उनमें मिथ्यात्व के द्रव्य का विभाग उसी समय न बतलाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय में स्वीकार किया है। यहाँ विसंगति यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्तिम समय में तो तीन भाग होने की व्यवस्था स्वीकार की गई है और उन तीनों भागों में कर्मपुंज का बँटवारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय से स्वीकार किया गया।

इस प्रकार इन दोनों परम्पराओं के प्रमाणों से स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि पर दिगम्बर आचार्यों ने टीका लिखी, केवल इसलिए हम उन्हें दिगम्बर-आचार्यों की कृति नहीं कहते, किन्तु उनकी शब्दयोजना, रचनाशैली और विषयविवेचन दिगम्बरपरम्परा के अन्य कार्मिक साहित्य के अनुरूप है, श्वेताम्बरपरम्परा के कार्मिक साहित्य के अनुरूप नहीं, इसलिए उन्हें हम दिगम्बर-आचार्यों की अमर कृति स्वीकार करते हैं।

अब आगे जिन चार उपशीर्षकों के अन्तर्गत उन्होंने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को श्वेताम्बर-आचार्यों की कृति सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है, उन पर क्रम से विचार करते हैं—

१

उन्होंने सर्वप्रथम "**दिगम्बरपरम्पराने अमान्य तेवा कषायप्राभृतचूर्णि अन्तर्गत पदार्थो**" इस उपशीर्षक के अन्तर्गत क० प्रा० चूर्णि के ऐसे दो उल्लेख उपस्थित किये हैं, जिन्हें वे स्वमति से दिगम्बरपरम्परा के विरुद्ध समझते हैं।

प्रथम उल्लेख है—"**सव्वलिंगेसु भज्जाणि।**"[२१] इस सूत्र का अर्थ है कि अतीत में सर्वलिंगों में बँधा हुआ कर्म क्षपक के सत्ता में विकल्प से होता है। इस पर

---

२१. (१३९) लेस्सा साद असादे च अभज्जा कम्म-सिप्प-लिंगे च।
खेत्तम्हि च भज्जाणि दु समाविभागे अभज्जाणि॥ १९२॥
चूर्णिसूत्र—"सव्वलिंगेसु च भज्जाणि।"
अनुवाद—"सब लिंगों में पूर्वबद्ध कर्म इस क्षपक के भजनीय हैं।"
जयधवला—"णिग्गंथलिंगवदिरित्तसेसाणं सलिंगग्गहणेसु वट्टमाणेण पुव्वबद्धाणि कम्माणि एदस्स खवगस्स भयणिज्जाणि त्ति वुत्तं होइ। किं कारणं? तावसादि-वेसग्गहणाणं सव्वजीवेसु संभवणियमाणुवलंभादो। तदो सिद्धमेदेसिं भयणिज्जतं।" अनुच्छेद ३८६।

उक्त प्रस्तावना-लेखक का कहना है कि "**क्षपक चारित्रवेषमां होय, पण खरो अने न पण होय, चारित्रना वेष वगर अर्थात् अन्य तापसादिना वेशमां रहेल जीव पण क्षपक थई शके छे, एटले प्रस्तुत सूत्र दिगम्बरमान्यता थी विरुद्ध छे।**" आदि।

अब सवाल यह है कि उक्त प्रस्तावना-लेखक ने उक्त सूत्र पर से यह निष्कर्ष कैसे फलित कर लिया कि '**क्षपक चारित्रवेषमां होय पण खरो अने न पण होय, चारित्रना वेष वगर अर्थात् अन्य तापसादिना वेशमां रहेल जीव पण क्षपक थई शके छे।**' कारण कि वर्तमान में जो क्षपक है, उसके अतीत काल में कर्मबन्ध के समय कौन-सा लिंग था, उस लिंग में बाँधा गया कर्म क्षपक के वर्तमान में सत्ता में नियम से होता है या विकल्प से होता है? इसी अन्तर्गत शंका को ध्यान में रखकर यह समाधान किया गया है कि 'विकल्प से होता है।' इस पर से यह कहाँ फलित होता है कि वर्तमान में वह क्षपक किसी भी वेश में हो सकता है? मालूम पड़ता है कि अपने सम्प्रदाय के व्यामोह और अपने कल्पित वेश के कारण ही उन्होंने उक्त सूत्र पर से ऐसा गलत अभिप्राय फलित करने की चेष्टा की है।

थोड़ी देर के लिये उक्त (श्वेताम्बर) मुनि जी ने जो अभिप्राय फलित किया है, यदि उसी को विचार के लिए ठीक मान लिया जाता है, तो जिस गति आदि में पूर्व में जिन भावों के द्वारा बाँधे गये कर्म वर्तमान में क्षपक के विकल्प से बतलाये हैं, वे भाव भी वर्तमान में क्षपक के विकल्प से मानने पड़ेंगे। उदाहरणार्थ, पहले सम्यग्मिथ्यात्व में बाँधे गये कर्म वर्तमान में जिस क्षपक के विकल्प से बतलाये हैं, तो क्या उस क्षपक के वर्तमान में विकल्प से सम्यग्मिथ्यात्व भी मानना पड़ेगा। यदि कहो कि नहीं, तो सम्यग्मिथ्यात्व में बँधे हुये, जो कर्म सत्तारूप से वर्तमान में क्षपक के विकल्प से होते हुए भी अतीतकाल में उन कर्मों के बन्ध के समय सम्यग्मिथ्यात्व भाव था, इतना ही आशय जैसे सम्यग्मिथ्यात्व-भावके विषय में लिया जाता है, उसी प्रकार सर्वलिंगों के विषय में भी यही आशय यहाँ लेना चाहिए।

हम यह स्वीकार करते हैं कि जैसे अतीत काल में अन्य लिंगों में बाँधे गये कर्म वर्तमान में क्षपक के विकल्प से बन जाते हैं, वैसे ही अतीत काल में जिनलिंग

अनुवाद—"निर्ग्रन्थलिंग के अतिरिक्त शेष सब लिंगों में रहनेवाले जीव के द्वारा पूर्व में बाँधे गये कर्मों की सत्ता इस क्षपक में भजनीय है (विकल्प से होती है), यह उक्त कथन का तात्पर्य है। इसका क्या कारण है? कारण यह है कि तापस आदि वेशों का ग्रहण सब जीवों में संभव हो, ऐसा नियम नहीं है। इसलिए इन लिंगों में पूर्वबद्ध कर्मों की भजनीयता सिद्ध हो जाती है।" कसायपाहुड / भाग १५ / चारित्रमोहक्षपणानुयोगद्वार / अनुच्छेद ३८६ / पृ.१४१।"

में बाँधे गये कर्मों के वर्तमान में क्षपक के विकल्प से स्वीकार करने में कोई प्रत्यवाय नहीं दिखाई देता। कारण कि संयमभाव का उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन प्रमाण और जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण बतलाया है। यथा—

''संजमाणुवादेण संजद-सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-संजदा-संज-दाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि॥ १०८॥ जहणेण अंतोमुहुत्तं॥ १०९॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं''॥ ११०॥ (ष.खं./पु.७/पृ.२२१-२२२)।

यहाँ जयधवलाटीकाकार ने उक्त सूत्र की व्याख्या करते हुए **णिग्गंथ लिंगवदिरित्तसेसाणं**[२१] यह लिखकर 'सर्वलिंग' पद से निर्ग्रन्थलिंग के अतिरिक्त जो शेष सविकार सर्वलिंगों का ग्रहण किया है, वह उन्होंने क्षपकश्रेणि पर आरोहण करनेवाला जीव अन्यलिंगवाला न होकर वर्तमान में निर्ग्रन्थ ही होता है और इस अपेक्षा से उसके निर्ग्रन्थ अवस्था में बाँधे गये कर्म भजनीय न होकर नियम से पाये जाते हैं, यह दिखलाने के लिए ही किया है, क्योंकि जो जीव अन्तरंग में निर्ग्रन्थ होता है, वह बाह्य में नियम से निर्ग्रन्थ होता है। किन्तु इन दोनों के परस्पर अविनाभाव को न स्वीकार कर जो श्वेताम्बर-सम्प्रदायवाले इच्छानुसार वस्त्र-पात्रादि-सहित अन्य वेश में रहते हुए भी वर्तमान में क्षपकश्रेणि आदि पर आरोहण करना या रत्नत्रयस्वरूप मुनिलिंग की प्राप्ति मानते हैं, उनके उस मत का निषेध करने के लिए जयधवलाटीकाकार ने **णिग्गंथलिंगवदिरित्तसेसाणं** पद की योजना की है। विचार कर देखा जाय, तो उनके इस निर्देश में किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिकता की गन्ध न होकर वस्तुस्वरूप का उद्घाटन मात्र है, क्योंकि भीतर से जीवन में निर्ग्रन्थ वही हो सकता है, जो वस्त्र-पात्रादि का बुद्धिपूर्वक त्यागकर बाह्य में जिनमुद्रा को पहले ही धारण कर लेता है। कोई बुद्धिपूर्वक वस्त्र-पात्र आदि को स्वीकार करे, उन्हें रखे, उनकी सम्हाल भी करे, फिर भी स्वयं को वस्त्र-पात्र आदि सर्व परिग्रह का त्यागी बतलावे, इसे मात्र जीवन की विडम्बना करनेवाला ही कहना चाहिए। अतः वर्तमान में जिसने वस्त्र-पात्रादि सर्व परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रन्थलिंग स्वीकार किया है, वही क्षपक हो सकता है और ऐसे क्षपक के निर्ग्रन्थलिंग ग्रहण करने के समय से लेकर बाँधे गये कर्म सत्ता में अवश्य पाये जाते हैं, यह दिखलाने के लिये ही श्री जयधवलाटीकाकार ने अपनी टीका में **सर्वलिंग** पद का अर्थ **निर्ग्रन्थलिंग-व्यतिरिक्त अन्य सब लिंग** किया है जो **'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः'** इस नीतिवचन का अनुसरण करनेवाला होने से उपयुक्त ही है।

दूसरा उल्लेख है—२४.**''णेगम-संगह-ववहारा सव्वे इच्छंति।''** २५.**''उजुसुदो ट्ठवणवज्जे।''** (क.प्रा.चूर्णि/पृ.१७)। [देखें, क.पा./भाग १/पृ.२५२]। इसका व्याख्यान करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन द्रव्यार्थिक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

नय हैं और ऋजुसूत्र आदि चार पर्यायार्थिक नय हैं। इस विषय में दिगम्बरपरम्परा में कहीं किसी प्रकार मतभेद दिखलाई नहीं देता। कषायप्राभृतचूर्णिकार भी अपने चूर्णिसूत्रों में सर्वत्र ऋजुसूत्रनय का पर्यायार्थिकनय में ही समावेश करते हैं। फिर भी उक्त (श्वे०) मुनि जी ने अपनी प्रस्तावना में यह उल्लेख किस आधार से किया है कि 'कषायप्राभृतचूर्णिकार ऋजुसूत्रनय को द्रव्यार्थिकनय स्वीकार करते हैं', यह समझ से बाहर है। उक्त कथन की पुष्टि करनेवाला उनका वह वचन इस प्रकार है—"**अहीं कषायप्राभृत-चूर्णिकार ऋजुसूत्रनयनो द्रव्यार्थिकनयमां समावेश करवा द्वारा श्वेताम्बराचार्योनी सैद्धान्तिक परम्पराने अनुसरे छे कारणके श्वेताम्बरों में सैद्धान्तिक परम्परा ऋजुसूत्रनयनो द्रव्यार्थिकनयमां समावेश करे छे।**"

कषायप्राभृत चूर्णिसूत्रों में ऐसे चार स्थल हैं, जहाँ निक्षेपों में नययोजना की गई है। प्रथम **पेज्ज** निक्षेप के भेदों की नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

२४. "**णेगम-संगहववहारा सव्वे इच्छंति।**" २५. "**उजुसुदो ठवणवज्जे।**" २६. "**सद्दणयस्स णामं भावो च।**" पृ.१७। (देखें, क.पा./भाग १/पृ.२३५-२४०)।

दूसरा **दोस** पद का निक्षेप कर उन सब में नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

३२. "**णेगम-संगह ववहारा सव्वे णिक्खेवे इच्छंति।**" ३३. "**उजुसुदो ट्ठवणवज्जे।**" ३४. "**सद्दणयस्स णामं भावो च।**" पृ.१७। (देखें, क.पा./भाग १/पृ.२५२-२५३)।

तीसरा **संकम** पद का निक्षेप कर उन सब में नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

५. "**णेगमो सव्वे संकमे इच्छइ।**" ६. "**संग्रह-ववहारा कालसंकममवणेंति।**" ७. "**उजुसुदो एदं च ठवणं च अवणेइ।**" ८. "**सद्दस्स णामं भावो य।**" पृ.२५१। (देखें, क.पा./भाग ८/पृ.८-१०)।

चौथा **ट्ठाण** पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

१०. "**णेगमो सव्वाणि ट्ठाणाणि इच्छइ।**" ११. "**संगह-ववहारा पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं च अवणेंति।**" १२. "**उजुसुदो एदाणि च ठवणं च अद्धट्ठाणं च अवणेइ।**" १३. "**सद्दणयो णामट्ठाणं संजमट्ठाणं खेत्तट्ठाणं भावट्ठाणं च इच्छदि।**" पृ. ६०७-६०८ (देखें, क.पा./भाग १२/पृ.१७५-१७६)।

ये चार स्थल है, जिनमें कौन निक्षेप किस नय का विषय है, यह स्पष्ट किया गया है। स्थापनानिक्षेप ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है, इसे इन सब स्थलों में स्वीकार

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किया गया है। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभृत-चूर्णिकार ने द्रव्यार्थिक-नयरूप से ऋजुसूत्रनय को नहीं स्वीकार किया है, क्योंकि सादृश्य-सामान्य की विवक्षा में ही किसी अन्य वस्तु में अन्य वस्तु की स्थापना की जा सकती है और सादृश्य-सामान्य द्रव्यार्थिकनय का विषय है, जिसे पर्यायार्थिकनय का भेद ऋजुसूत्रनय नहीं स्वीकार करता। अतः यह स्पष्ट है कि कषायप्राभृत-चूर्णिकार ने ऋजुसूत्रनय को पर्यायार्थिकनयरूप से ही स्वीकार किया है, द्रव्यार्थिकनयरूप से नहीं। फिर नहीं मालूम उक्त प्रस्तावना में किस आधार से यह विधान करने का साहस किया है कि "कषायप्राभृतचूर्णिकार ऋजुसूत्रनय को द्रव्यार्थिकनय में समावेश करने के लिए श्वेताम्बर आचार्यों की परम्परा का अनुसरण करते हैं?"

शायद उन्होंने अर्थनय को द्रव्यार्थिकनय समझकर यह विधान किया है। किन्तु यदि यही बात है तो हमें लिखना पड़ता है कि या तो यह उनकी नयविषयक अनभिज्ञता का परिणाम है या फिर इसे सम्प्रदायका व्यामोह कहना होगा। कारण कि जब कि आगम में द्रव्यार्थिकनय के नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीनों भेद अर्थनयस्वरूप ही स्वीकार किये गये हैं और पर्यायार्थिकनय के दो भेद करके उनमें से ऋजुसूत्रनय को अर्थनयस्वरूप स्वीकार किया गया है, ऐसी अवस्था में बिना आधार के उसे द्रव्यार्थिकनय स्वरूप बतलाना और अपने इस अभिप्राय से कषायप्राभृतचूर्णिकार को जोड़ना इसे सम्प्रदायका व्यामोह नहीं कहा जायगा तो और क्या कहा जायगा?

यों तो सातों ही नयों का विषय अर्थ-वस्तु है। फिर भी उनमें से नैगमादि तीन नय पर्याय को गौण कर सामान्य की मुख्यता से वस्तु का बोध कराते हैं, इसलिए वे द्रव्यार्थिकरूप से अर्थनय कहे गये हैं। ऋजुसूत्रनय सामान्य को गौणकर वर्तमान पर्याय की मुख्यता से वस्तु का बोध कराता है, इसलिए वह पर्यायार्थिकरूप से अर्थनय कहा गया है। और शब्दादि तीन नय यद्यपि सामान्य को गौणकर वर्तमान पर्याय की मुख्यता से ही वस्तु का बोध कराते हैं, फिर भी ऋजुसूत्र से इन शब्दादि तीन नयों में इतना अन्तर है कि ऋजुसूत्रनय अर्थप्रधाननय है और शब्दादि तीन नय शब्दप्रधान नय हैं। इसलिए नैगमादि सातों नय अर्थनय और शब्दनय, इन दो भेदों में विभक्त होकर अर्थनय के चार और शब्दनय के तीन भेद हो जाते हैं। यहाँ अर्थनय के चार भेदों में ऋजुसूत्रनय सम्मिलित है, मात्र इसीलिए वह द्रव्यार्थिकनय नहीं हो जायगा। रहेगा वह पर्यायार्थिक ही। षट्खण्डागम और कषायप्राभृतचूर्णिसूत्र प्रभृति जितना भी दिगम्बर आचार्यों द्वारा लिखा गया साहित्य है, वह सब एक स्वर से एकमात्र इसी अभिप्राय की पुष्टि करता है। मालूम पड़ता है कि उक्त प्रस्तावना लेखक ने दिगम्बर-साहित्य का और स्वयं कषायप्राभृतचूर्णिसूत्र का सम्यक् प्रकार से परिशीलन किये बिना ही यह अनर्गल विधान किया है। यहाँ प्रसंग से हम यह सूचित कर देना चाहते

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हैं कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के काल में ही वस्त्र-पात्रधारी श्वेताम्बरमत की स्थापना की नींव पड़ गई थी। यह इसी से स्पष्ट है कि श्वेताम्बर-परम्परा जिनलिंगधारी भद्रबाहु को श्रुतकेवली स्वीकार करके भी उनके प्रति अनास्था दिखलाती है और उन्हें गौण कर अपनी परम्परा को स्थूलभद्र आदि से स्वीकार करती है।

२

प्रस्तावना-लेखक ने '**श्वेताम्बराचार्योंना ग्रन्थोंमां कपायप्राभृतना आधार साक्षी तथा अतिदेशो**' इस दूसरे उपशीर्षक के अन्तर्गत श्वेताम्बर-कार्मिक-साहित्य में जहाँ-जहाँ कषायप्राभृत के उल्लेखपूर्वक कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि को विषय की पुष्टि के रूप से निर्दिष्ट किया गया है या विषय के स्पष्टीकरण के लिए उनको साधार उपस्थित किया गया है, उनका संकलन किया है।

१. उनमें से प्रथम उल्लेख पंचसंग्रह (श्वे.) का है। इसकी दूसरी गाथा में **शतक** आदि पाँच ग्रन्थों को संक्षिप्त कर इस **पंचसंग्रह** ग्रन्थ की रचना की गई है, अथवा पाँच द्वारों के आश्रय से इस **पंचसंग्रह** ग्रन्थ की रचना की गई है, यह बतलाया गया है। किन्तु स्वयं चन्द्रर्षि महत्तर ने उक्त ग्रन्थ की तीसरी गाथा में वे पाँच द्वार कौन से हैं, इनका जिस प्रकार नामोल्लेख कर दिया है, उस प्रकार गाथारूप या वृत्तिरूप अपनी किसी भी रचना में एक **शतक** ग्रन्थ के नामोल्लेख को छोड़कर अन्य जिन चार ग्रंथों के आधार से इस **पंचसंग्रह** ग्रंथ की रचना की गई है, उनका नामोल्लेख नहीं किया है। अत एव एक **शतक** के सिवाय अन्य जिन चार ग्रंन्थों का अपने पंचसंग्रह ग्रंथ में उन्होंने संक्षेपीकरण किया है, वे चार ग्रंथ कौन से हैं, इसका तो उनकी उक्त दोनों रचनाओं से पता चलता नहीं। हाँ उक्त ग्रंथ की '**नमिऊण जिणं वीरं**' इस मंगल गाथा की टीका में मलयगिरि ने अवश्य ही उन पाँच ग्रंथों का नामोल्लेख किया है। स्वयं चन्द्रर्षि महत्तर अपनी रचना में पाँच द्वारों का नामोल्लेख तो करते हैं, परन्तु उन ग्रंथों का नामोल्लेख नहीं करते, इसमें क्या रहस्य है, यह अवश्य ही विचारणीय है। बहुत सम्भव तो यही दिखलाई देता है कि श्वेताम्बरपरम्परा में क्षपणा आदि विधि का आनुपूर्वी से सविस्तर कथन उपलब्ध न होने के कारण उन्होंने कषायप्राभृत (कषायप्राभृत में उसकी चूर्णि भी परिगणित है) का सहारा तो अवश्य लिया होगा, परन्तु यतः कषायप्राभृत श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रंथ नहीं है, अतः पञ्चसंग्रह में किन पाँच ग्रंथों का संग्रह है, इसका पूरा स्पष्टीकरण करना उन्होंने उचित नहीं समझा होगा।

२. दूसरा उल्लेख **शतकचूर्णि** के टिप्पण का है। यह टिप्पण अभी तक मुद्रित नहीं हुए हैं। प्रस्तावना-लेखक ने अवश्य ही यह संकेत किया है कि उक्त टिप्पण

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में किस कषाय में कितनी कृष्टियाँ होती हैं इस विषय की प्ररूपणा करनेवाली कषायप्राभृत की १६३ क्रमांक गाथा उद्धृत पाई जाती है। सो इससे यही तो समझा जा सकता है कि श्वेताम्बरपरम्परा में क्षपणाविधि की सांगोपांग प्ररूपणा न होने से शतकचूर्णि के कर्त्ता ने किस कषाय की कितनी कृष्टियाँ होती हैं, इस विषय का विशेष विवेचन प्रायः कषायप्राभृत के आधार से किया है। यह समझकर ही उक्त टिप्पणकार ने प्रमाण-स्वरूप उक्त गाथा उद्धृत की होगी।

३. तीसरा उल्लेख **सप्ततिकाचूर्णि** का है। इसमें सूक्ष्मसाम्पराय-सम्बन्धी कृष्टियों की रचना का निर्देशकर उनके लक्षण को कषायप्राभृत के अनुसार जानने की सूचना सप्ततिकाचूर्णिकार ने इसीलिए की जान पड़ती है कि श्वेताम्बरपरम्परा में इस प्रकार का सांगोपांग विवचेन नहीं पाया जाता। सप्ततिकाचूर्णि का उक्त उल्लेख इस प्रकार है—

''तं वेयंतो बितियकिट्टीओ तइयकिट्टीओ य दलियं घेतूणं सुहुमसांपराइय-किट्टीओ करेइ। तेसिं लक्खणं जहा कसायपाहुडे।''

४. चौथा उल्लेख भी **सप्ततिकाचूर्णि** का है। इसमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में जो अनेक वक्तव्य हैं उन्हें कषायप्राभृत और कर्मप्रकृतिसंग्रहणी के अनुसार जानने की सूचना की गई है। सप्ततिकाचूर्णि का वह उल्लेख इस प्रकार है—

''एत्थ अपुव्वकरण-अणियट्टिअद्धासु अणेगाइ वत्तव्वगाइं जहा कसायपाहुडे कम्मपगडिसंगहणीए वा तह वत्तव्वं।''

सो इस विषय में इतना ही कहना है कि **कर्मप्रकृतिसंग्रहणी** स्वयं एक संग्रह-रचना है। अतः उसमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के कालों में होनेवाले कार्य-विशेषों का जो भी निर्देश उपलब्ध होता है, वह सब अन्य ग्रन्थ के आधार से ही लिया गया होना चाहिए। इस विषय में जहाँ तक हम समझ सके हैं, **कषायप्राभृतचूर्णि** और **कर्मप्रकृतिचूर्णि** की तुलना करने पर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि **कर्मप्रकृति-चूर्णिकार** के समक्ष **कषायप्राभृतचूर्णि** अवश्य रही है। यथा—

१०२. **''चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ।''** १०३. **''ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा।''** कषायप्राभृतचूर्णि।

अब इसके प्रकाश में कर्मप्रकृति-उपशमनाकरण गाथा १९ की चूर्णि पर दृष्टिपात कीजिए—

''चरिमसमयमिच्छाद्दिट्ठी से काले उवसमसम्मद्दिट्ठि होहि त्ति ताहे बितीय-ट्ठितीते तिइा अणुभागं करेति।''

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यहाँ **कर्मप्रकृति-चूर्णिकार** ने अपने सम्प्रदाय के अनुसार मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्तिम समय में मिथ्यात्व के द्रव्य के तीन भाग हो जाते हैं, इस मत की पुष्टि करने के लिए उक्त वाक्यरचना के मध्य में **होहित्ति** इतना पाठ अधिक जोड़ दिया है। बाकी की पूरी वाक्यरचना कषायप्राभृतिचूर्णि से ली गई है, यह कर्मप्रकृति की १८ और १९ वीं गाथाओं तथा उनकी चूर्णियों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट प्रतीत होता है।

यह एक उदाहरण है। पूरे प्रकरण पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णि का उपशमना-प्रकरण तथा क्षपणाविधि कषायप्राभृतचूर्णि के आधार से लिपिबद्ध करते हुए भी कषायप्राभृतचूर्णि से श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के अनुसार मतभेद के स्थलों को यथावत् कायम रखा गया है। आवश्यकता होने पर हम इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डालेंगे।

५. पाँचवाँ उल्लेख भी **सप्ततिकाचूर्णि** का है। इसमें मोहनीय के चार के बन्धक के एक का उदय होता है, इस मत को सप्ततिकाचूर्णिकार ने स्वीकार कर उसकी पुष्टि कषायप्राभृत आदि से की है। तथा साथ ही दूसरे मत का भी उल्लेख कर दिया है। सो उक्त चूर्णिकार के उक्त कथन से इतना ही ज्ञात होता है कि उनके समक्ष कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि थी।

इस प्रकार श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों के पाँच उल्लेख हैं, जिनमें कषायप्राभृत के आधार से उसके नामोल्लेखपूर्वक प्रकृत विषय की पुष्टि तो की गई है, परन्तु इन उल्लेखों पर से एक मात्र यही प्रमाणित होता है कि श्वेताम्बरसम्प्रदाय में दर्शन-चरित्रमोहनीय की उपशमना-क्षपणाविधि की प्ररूपणा करनेवाला सर्वांग साहित्य लिपिबद्ध न होने से इसकी पूर्ति दिगम्बर आचार्यों द्वारा रचित **कषायप्राभृत** और उसकी **चूर्णि** से की गई है। परन्तु ऐसा करते हुए भी उक्त शास्त्रकारों ने उन दोनों को श्वेताम्बर-परम्परा का स्वीकार करने का साहस भूलकर नहीं किया है। यह तो केवल उक्त प्रस्तावना-लेखक श्वे० मुनि हेमचन्द्रविजय जी का ही साहस है, जो बिना प्रमाण के ऐसा विधान करने के लिए उद्यत हुए हैं। वस्तुतः देखा जाय तो एक तो कुछ अपवादों को छोड़कर कर्मसिद्धान्त की प्ररूपणा दोनों सम्प्रदायों में लगभग एक-सी पाई जाती है, दूसरे जिन विषयों की पुष्टि में श्वेताम्बर आचार्यों ने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि का प्रमाणरूप में उल्लेख किया है, उन विषयों का सांगोपांग विवेचन श्वेताम्बर-परम्परा में उपलब्ध न होने से ही उन आचार्यों को ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ा है, इसलिए श्वेताम्बर आचार्यों ने अपने साहित्य में **कषायप्राभृत** और उसकी **चूर्णि** का प्रकृत विषयों की पुष्टि में उल्लेख किया, मात्र इसलिए उन्हें श्वेताम्बर आचार्यों की कृति घोषित करना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता।

३

आगे खवगसेढि की प्रस्तावना में **कषायप्राभृत मूल तथा चूर्णिनी रचनानो काल** उपशीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तावनालेखक ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे क्यों ठीक नहीं हैं, इसकी यहाँ मीमांसा की जाती है—

१. जिस प्रकार **जयधवला** के प्रारम्भ में दिगम्बर-परम्परा के मान्य आचार्य वीरसेन ने तथा **श्रुतावतार** में इन्द्रनन्दि ने कषायप्राभृत के कर्तारूप में आचार्य गुणधर का और चूर्णिसूत्रों के कर्तारूप में आचार्य यतिवृषभ का स्मरण किया है, इस प्रकार श्वेताम्बर-परम्परा में किसी भी पट्टावली या कार्मिक या इतर साहित्य में इन आचार्यों का किसी भी रूप में नामोल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः इस विषय में उक्त प्रस्तावनालेखक का यह लिखना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि "पट्टावली में पाटपरम्परा में आनेवाले प्रधानपुरुषों के नामों का उल्लेख होता है" आदि। क्योंकि पट्टावली में पाटपरम्परा के प्रधान पुरुषों के रूप में यदि उनका नाम नहीं भी आया था, तो भी यदि वे श्वेताम्बरपरम्परा के आचार्य होते, तो अवश्य ही किसी न किसी रूप में, कहीं न कहीं, उनके नामों का उल्लेख अवश्य ही पाया जाता। श्वेताम्बरपरम्परा में इनके नामों का उल्लेख न पाया जाना ही यह सिद्ध करता है कि इन्हें श्वेताम्बरपरम्परा के आचार्य मानना युक्तियुक्त नहीं है।

२. एक बात यह भी कही गई है कि जयधवला में एक स्थल पर गुणधर का वाचकरूप से उल्लेख दृष्टिगोचर होता है, इसलिए वे वाचकवंश के सिद्ध होने से श्वेताम्बर-परम्परा के आचार्य होने चाहिये, सो इसका समाधान यह है कि यह कोई ऐसा तर्क नहीं है कि जिससे उन्हें श्वेताम्बरपरम्परा का स्वीकार करना आवश्यक समझा जाय। **वाचक** शब्द का अर्थ वाचना देनेवाला होता है, जो श्वेताम्बरमत की उत्पत्ति के पहले से ही श्रमणपरम्परा में प्राचीनकाल से रूढ़ चला आ रहा है। अतः जयधवला में गुणधर को यदि वाचक कहा भी गया है, तो इससे भी उन्हें श्वेताम्बर-परम्परा का आचार्य मानना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता।

३. यह ठीक है कि श्वेताम्बरपरम्परा में नन्दिसूत्र की पट्टावली में तथा अन्यत्र आर्यमंक्षु और नागहस्ति का नामोल्लेख पाया जाता है और जयधवला के प्रथम मंगलाचरण में चूर्णिसूत्रों के कर्ता आचार्य यतिवृषभ को आर्यमंक्षु का शिष्य और नागहस्ति का अन्तेवासी कहा गया है, परन्तु मात्र यह कारण भी आचार्य यतिवृषभ को श्वेताम्बर-परम्परा का मानने के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार श्वेताम्बर-परम्परा उक्त दोनों आचार्यों को अपनी परम्परा का स्वीकार करती है, उसी प्रकार दिगम्बर-परम्परा ने भी उन्हें अपनी परम्परा का स्वीकार किया है, जैसा कि जयधवला आदि के उक्त उल्लेखों से ज्ञात होता है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

एक बात और है, वह यह कि नन्दिसूत्र की पट्टावली विश्वसनीय भी नहीं मानी जा सकती, क्योंकि उसमें जिस रूप में आर्यमंक्षु और नागहस्ति का उल्लेख पाया जाता है, उसके अनुसार वे दोनों एककालीन नहीं सिद्ध होते। श्री मुनि जिनविजय जी का तो यहाँ तक कहना है कि यह पट्टावली अधूरी है, क्योंकि इस पट्टावली में आर्य मंक्षु और आर्य नागहस्ती के मध्य केवल आर्यनन्दिल को स्वीकार किया गया है, किन्तु आर्य मंक्षु और आर्यनन्दिल के मध्य पट्टधर चार आचार्य और हो गये हैं, जिनका उल्लेख इस पट्टावली में छूटा हुआ है। (वी.नि.स.और जैन का.ग. / पृ.१२४)।

दूसरे, नन्दीसूत्र की पट्टावली में अलग से ऐसा कोई उल्लेख भी दृष्टिगोचर नहीं होता, जिससे आर्यमंक्षु को स्वतन्त्ररूप से कर्मशास्त्र का ज्ञाता स्वीकार किया जाय। उसमें आर्य नागहस्ति को अवश्य ही कर्मप्रकृति में प्रधान स्वीकार किया गया है। इससे इस बात का सहज ही पता लगता है कि जिसने नन्दीसूत्र की पट्टावली का संकलन किया है, उसे इस बात का पता नहीं था कि गुणधर आचार्य द्वारा रची गई गाथाएँ साक्षात् या आचार्यपरम्परा से आर्यमंक्षु को प्राप्त हुई थीं, जब कि दिगम्बर-परम्परा में यह प्रसिद्धि आनुपूर्वी से चली आ रही है। यही बात आर्य नागहस्ति के विषय में भी समझनी चाहिए, क्योंकि उस (नन्दीसूत्र-पट्टावली) में आर्य नागहस्ती को कर्मप्रकृति में प्रधान स्वीकार करके भी, इन्हें न तो कषायप्राभृत का ज्ञाता स्वीकार किया गया है और न ही उन्हें गुणधर आचार्य द्वारा रची गई गाथाएँ आचार्य-परम्परा से या साक्षात् प्राप्त हुईं, यह भी स्वीकार किया गया है। यह एक ऐसा तर्क है, जो प्रत्येक विचारक को यह मानने के लिये बाध्य करता है कि कषायप्राभृत श्वेताम्बर-आचार्यों की कृति न होकर दिगम्बर-आचार्यों की ही रचना है।

तीसरे दिगम्बर-परम्परा में कषायप्राभृत और चूर्णि का जो प्रारम्भकाल से पठन-पाठन होता आ रहा है, इससे भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इन्द्रनन्दी ने अपने द्वारा रचित **श्रुतावतार** में आचार्य यतिवृषभ के चूर्णिसूत्रों के अतिरिक्त दूसरी ऐसी कई पद्धति-पंजिकाओं का उल्लेख किया है, जो कषायप्राभृत पर रची गई थीं (क.पा. / भाग १ / प्रस्तावना / पृ.९ तथा १४ से)। स्वयं वीरसेन ने अपनी जयधवला टीका मे ऐसी कई उच्चारणाओं, स्वालिखित उच्चारणा और वप्पदेवलिखित उच्चारणा का उल्लेख किया है, जो जयधवला टीका के पूर्व रची गई थीं। बहुत संभव है कि इनमें इन्द्रनन्दी द्वारा उल्लिखित पद्धति-पंजिकाएँ भी सम्मिलित हों। (जयधवला / क.पा. / भा.१ / प्रस्ता. / पृ.९ से १४)।

उक्त तथ्यों के सिवाय प्रकृत में यह भी उल्लेखनीय है कि आचार्य यतिवृषभ ने अपने चूर्णिसूत्रों में प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान इन दो प्रकार के उपदेशों का उल्लेख

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पद-पद पर किया है तथा इन दोनों प्रकार के उपदेशों में से किसका उपदेश प्रवाह्यमान है और किसका उपदेश अप्रवाह्यमान है, इस विषय का स्पष्ट निर्देश स्वयं जयधवलाकार ने अपनी टीका में किया है (देखो, प्रस्तुत भाग १२/पृ.१८, २३-६६, ७१, ११६ और १४५)। सो इससे भी इस बात का पता लगता है कि कर्मविषयक किस विषय में इन दोनों (आर्यमंक्षु और नागहस्ति) का क्या अभिप्राय था और उनमें से कौन उपदेश प्रवाह्यमान अर्थात् आचार्यपरम्परा से आया हुआ था और कौन उपदेश अप्रवाह्यमान अर्थात् आचार्यपरम्परा से प्राप्त नहीं था, इसकी पूरी जानकारी जयधवला-टीकाकार को निःसंशयरूप से थी।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि कषायप्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रों के रचनाकाल में तथा जयधवला टीक के रचनाकाल में शताब्दियों का अन्तर रहते हुए भी जयधवला के टीकाकार ने उक्त जानकारी कहाँ से प्राप्त की होगी? समाधान यह है कि यह तो जयधवला टीका के अवलोकन से ही ज्ञात होता है कि उसकी रचना केवल कषाय-प्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रों के आधार पर ही न होकर उसकी रचना के समय इन दोनों रचनाओं से सम्बन्ध रखनेवाला बहुत-सा उच्चारणा वृत्ति आदि रूप साहित्य जयधवलाकर के सामने रहा है। और इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उच्चारणा वृत्ति आदि नाम से अभिहित किये गये उक्त साहित्य से वे इस बात का निर्णय करते होंगे कि इनमें से कौन उपदेश अप्रवाह्यमान होकर आर्यमंक्षु द्वारा प्रतिपादित है, कौन उपदेश प्रवाह्यमान होकर आर्य नागहस्ति या दोनों द्वारा प्रतिपादित है और कौन उपदेश ऐसा है जिसके विषय में उक्त प्रकार से निर्णय करना सम्भव न होने से केवल चूर्णिसूत्रों के आधार से प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान रूप से उनका उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत (१२वें) भाग में पद-पद पर इस विषय के ऐसे अनेक उल्लेख आये हैं, जिनसे प्रत्येक पाठक को उक्त कथन की पूरी जानकारी मिल जाती है। यथा—

१. आर्यमंक्षु का उपदेश अप्रवाह्यमान है और नागहस्ति का उपदेश प्रवाह्यमान है। यथा—

"अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम। णागहत्थिखव-णाणमुवएसो पवाइज्जंतओ त्ति घेत्तव्वो।" (पृ. ७२)

यहाँ उपयोग अर्थाधिकार की ४थी गाथा के व्याख्यान का प्रसंग है। उसमें कषाय और अनुभाग की चर्चा के प्रसंग से आचार्य यतिवृषभ ने उक्त दोनों आचार्यों के दो उपेदशों का उल्लेख किया है। उनमें से कषाय और अनुभाग एक हैं यह बतलानेवाले भगवान् आर्यमंक्षु के उपदेश को जयधवला के टीकाकार ने अप्रवाह्यमान कहा है और

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कषाय और अनुभाग में भेद बतलानेवाले नागहस्ति श्रवण के उपदेश को प्रवाह्यमान बतलाया है। (पृ. ६६ और ७१-७२)।

२. उक्त दोनों आचार्यों का उपदेश प्रवाह्यमान होने का प्रतिपादक वचन—"**तेसिं चेव भयवंताणमज्जमंखु-णागहत्थिणं पवाइज्जंतेणुवएसेण**---।" (पृ. २३)।

यहाँ क्रोधादि चारों कषायों के काल के अल्पबहुत्व को गतिमार्गणा और चौदह जीवसमासों में बतलाने के प्रसंग से उक्त वचन आया है। सो यहां चूर्णिसूत्रकार ने गतिमार्गणा और चौदह जीवसमासों में मात्र प्रवाह्यमान उपदेश का निर्देश किया है, अप्रवाह्यमान उपदेश का नहीं। जयधवलाकार ने भी चूर्णिसूत्रों का अनुसरण कर दोनों स्थानों में मात्र प्रवाह्यमान उपदेश का खुलासा करते हुए "**तेसिं चेव उवदेसेण चोद्दस-जीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि।**" (पृ.२३) इस चूर्णिसूत्र के व्याख्यान के प्रसंग से उसमें आये हुए **तेसिं चेव** इस पद का व्याख्यान करते हुए उक्त पद से उक्त दोनों भगवन्तों का ग्रहण किया है।

३. इस प्रकार उक्त दो प्रकार के उल्लेख तो ऐसे हैं, जिनसे हमें उनमें से कौन उपदेश प्रवाह्यमान है और कौन उपदेश अप्रवाह्यमान है, इस बात का पता लगने के साथ जयधवलाटीका से उनके उपदेष्टा आचार्यों का भी पता लग जाता है। किन्तु चूर्णिसूत्रों में प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान के भेदरूप कुछ ऐसे भी उपदेश संकलित हैं, जिनके विषय में जयधवलाकार को विशेष जानकारी नहीं थी। अतः जयधवलाकार ने इनका स्पष्टीकरण तो किया है, परन्तु आचार्यों के नामोल्लेखपूर्वक उनका निर्देश नहीं किया। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस विषय में जयधवलाकार के समक्ष उपस्थित साहित्य में उक्त प्रकार का विशेष निर्देश नहीं होगा, अतः उन्होंने दोनों उपदेशों का स्पष्टीकरण मात्र करना उचित समझा। जयधवला के आगे दिये जानेवाले इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है—

"**जो एसो अणंतरपरूविदो उवएसो सो पवाइज्जदे ... । अपवाइज्जंतेण पुण उवदेसेण केरिसी पयदपरूवणा होदि त्ति एवं विहासंकाए णिण्णयकरण-ट्ठमुत्तर-सुत्तमोइण्णं।**" (पृ. ११६)।

इस उल्लेख में दो प्रकार के उपदेशों का निर्देश होते हुए भी चूर्णिकार की दृष्टि में उनके प्रवक्तारूप में कौन प्रमुख आचार्य विवक्षित थे, इसकी आनुपूर्वी से लिखित या मौखिक रूप में सम्यक् अनुश्रुति प्राप्त न होने के कारण जयधवलाकार ने मात्र उनकी व्याख्या कर दी है।

यह है जयवधला की व्याख्यानशैली। इसके टीकाकार को जिस विषय का किसी न किसी रूप में आधार मिलता गया, उसकी वे उसके साथ व्याख्या करते हैं और

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जिस विषय का आनुपूर्वी से किसी प्रकार का आधार उपलब्ध नहीं हुआ, उसकी वे अनुश्रुति के अनुसार ही व्याख्या करते हैं। टीका में वे प्रामाणिकता को बराबर बनाये रखते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस उपदेश को उन्होंने आर्यमंक्षु का बतलाया है, वह भी साधार ही बतलाया है और जिसे उन्होंने नागहस्ति का बतलाया है वह भी साधार ही बतलाया है। अतः इससे सिद्ध है कि दिगम्बरपरम्परा में इन दोनों आचार्यों के उपदेशों की आनुपूर्वी पठन-पाठन तथा टीका-टिप्पणी आदि रूप से यथावत् कायम रही। किन्तु श्वेताम्बरपरम्परा में ऐसा कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। उस परम्परा में जितना भी कार्मिक-साहित्य उपलब्ध है, उसमें कहीं भी अन्य गर्ग प्रभृति आचार्यों के मत-मतान्तरों की तरह इन आचार्यों का नामोल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता। उक्त प्रस्तावना-लेखक को चाहिए कि वे इस विषय में एक नन्दीसूत्र-पट्टावली को निर्णायक न मानें। किन्तु अपने कार्मिक-साहित्य पर भी दृष्टिपात करें। यदि वे तुलनात्मक दृष्टि से दोनों परम्पराओं के कार्मिक साहित्य पर सम्यक् रूप से दृष्टिपात करेंगे, तो उन्हें न केवल वास्तविकता का पता लग जायगा, किन्तु वे नन्दिसूत्र की पट्टावली में आर्यमंक्षु और नागहस्ति का उल्लेख होने मात्र से उसके आधार पर कषायप्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बरमत का होने का आग्रह करना भी छोड़ देंगे। (उस परम्परा में एतद्विषयक अन्य उल्लेख नन्दीसूत्र-पट्टावली का अनुसरण करते हैं, अतः उन पर विचार नहीं किया)।

इस प्रकार इतने विवेचन से यह सिद्ध हो जाने पर कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि दिगम्बर आचार्यों की अमर कृतियाँ हैं, चूर्णिसूत्रों के रचनाकाल का कोई विशेष मूल्य नहीं रह जाता। फिर भी इस विषय को जयधवला (क.पा.) प्रथम भाग में कालगणना के प्रसंग से अत्यन्त स्पष्टरूप में स्वीकार कर लिया गया है कि वर्तमान त्रिलोक-प्रज्ञप्ति को आचार्य यतिवृषभ की कृति स्वीकार करने पर चूर्णिसूत्रों की रचना की यह कालगणना की जा रही है। प्रस्तावना (पृ.४३) के शब्द हैं—

"हमने कुछ पूर्व जो यतिवृषभ का समय बतलाया है, वह त्रिलोकप्रज्ञप्ति और चूर्णिसूत्रों के रचयिता यतिवृषभ को एक मानकर उनकी त्रिलोकप्रज्ञप्ति के आधार पर लिखा है।"

अब यदि वर्तमान त्रिलोकप्रज्ञप्ति संग्रहग्रन्थ होने से या अन्य किसी कारण से उन्हीं आचार्य यतिवृषभ की कृति सिद्ध नहीं होती है, जिनकी रचना कषायप्राभृत के चूर्णिसूत्र हैं, तो इसमें दिगम्बरपरम्परा को या जयधवला के प्रस्तावना-लेखकों को कोई आपत्ति भी नहीं दिखलाई देती। यह एक स्वतन्त्र ऊहापोह का विषय है और इस विषय पर स्वतन्त्ररूप से ऊहापोह होना चाहिए। किन्तु इस आधार पर कषायप्राभृत

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

या उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बर-परम्परा का सिद्ध करने का अनुचित प्रयास करना शोभास्पद प्रतीत नहीं होता।

अपनी प्रस्तावना के इसी प्रकरण में उक्त प्रस्तावना-लेखक ने अपनी साम्प्रदायिक मान्यता के आग्रहवश दिगम्बरपरम्परा को एक मत बतलाकर उसकी उत्पत्ति "दिगम्बर मतोत्पत्तिनो काल वीर संवत् ६०० पछी छे।" इन शब्दों द्वारा वीर सं० ६०० के बाद बतलाई है। सो इसे पढ़कर ऐसा लगता है कि उक्त प्रस्तावना-लेखक को प्रकृत विषय के इतिहास का सम्यक् अनुसन्धान करने की अपेक्षा बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थस्वरूप, प्राचीन श्रमण परम्परा, उसके प्राचीन साहित्य और इतिहास का श्वेताम्बरीकरण करने की अधिक चिन्ता दिखलाई देती है। अन्यथा वे दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा में कौन अर्वाचीन है और कौन प्राचीन है, इसका उल्लेख किये बिना उक्त साहित्यविषयक अन्य प्रमाणों के आधार से मात्र गुणधर और यतिवृषभ इन दोनों आचार्यों और उनकी रचनाओं के काल का ऊहापोह करते हुए अपना फलितार्थ प्रस्तुत करते।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि प्रकृत में पहले हमने (उक्त प्रस्तावना-लेखक ने) उक्त दोनों आचार्यों को प्राचीन (वीर नि० सं० ४६७ लगभग का) सिद्ध किया है और उसके बाद दिगम्बरमत की उत्पत्ति को वीर नि० ६०० वर्ष के बाद की बतलाकर उन्हें श्वेताम्बर सिद्ध किया है। पर विचारकर देखा जाय तो किसी भी वस्तु को इस पद्धति से अपने सम्प्रदाय की सिद्ध करने का यह उचित मार्ग नहीं, क्योंकि जैसा कि हम पूर्व में बतला आये हैं, ऐसे अन्य अनेक प्रमाण हैं, जिनसे उक्त दोनों आचार्य तथा उनकी रचनाएँ काल की अपेक्षा प्राचीन होने पर भी, न तो वे आचार्य श्वेताम्बर सिद्ध होते हैं और न उनकी रचनाएँ ही श्वेताम्बर सिद्ध होती हैं।

अत: कषायप्राभृत मूल तथा चूर्णि के रचनाकाल को आधार मानकर इस प्रकरण में इनको श्वेताम्बर आचार्यों की कृति सिद्ध करने का जो प्रयत्न किया गया है, वह किस प्रकार तर्क और प्रमाण हीन है, इसका सांगोपांग विचार किया।

४

आगे **खवगसेढि** की प्रस्तावना में '**कषायप्राभृत चूर्णिनी रचनाना काल अंगे वर्तमान सम्पादकोनी मान्यता**' आदि कतिपय शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तावना-लेखक ने जो विचार व्यक्त किये हैं, उनकी विस्तृत मीमांसा की तत्काल आवश्यकता न होने से विधिरूप से उनमें से कुछ मुद्दों पर संक्षेप में प्रकाश डाल देना आवश्यक प्रतीत होता है।

१. त्रिलोकप्रज्ञप्ति के अंत में ये दो गाथाएँ पाई जाती हैं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणवसहं।
दट्ठूण परिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढए वसहं॥ ९/७६॥

चुण्णिस्सरूवत्थकरणसरूवपमाण होइ किं जं तं।
अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए॥ ९/७७।

इनमें से प्रथम गाथा जयधवला-सम्यक्त्व-अधिकार के मंगलाचरण के रूप में पाई जाती है। उसका पाठ इस प्रकार है—

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणहरवसहं।
दुसहपरीसहविसहं जइवसहं धम्मसुत्तपाढरवसहं॥
(क.पा./भाग १२/पृ.१९३)।

इसका अर्थ हे कि जिनवरवृषभ, गणधरवृषभ, गुणधरवृषभ तथा दुःसह परीषहों को जीतनेवाले और धर्मसूत्र के पाठकों में श्रेष्ठ यतिवृषभ को तुम सब प्रणाम करो।

त्रिलोकप्रज्ञप्ति के अन्त में आई हुई इस गाथा का पाठभेद के होते हुए भी लगभग यही अर्थ है। पाठभेद लिपिकारों के प्रमाद से हुआ जान पड़ता है।

अब विचार यह करना है कि यह गाथा त्रिलोकप्रज्ञप्ति से उठाकर जयधवला में निक्षिप्त की गई है या जयधवला से उठाकर त्रिलोकप्रज्ञप्ति में निक्षिप्त की गई है। सम्यक्त्व-अधिकार के प्रारम्भ में आई हुई उक्त मंगल गाथा के बाद वहाँ एक दूसरी गाथा भी पाई जाती है, जिस पर दृष्टिपात करने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त मंगलगाथा जयधवला के सम्यक्त्व-अधिकार की ही होनी चाहिए, क्योंकि इस गाथा के पूर्वार्ध द्वारा उक्त गाथा के मंगलार्थ का समर्थन कर उत्तरार्ध द्वारा विषय का निर्देश किया गया है। वह गाथा इस प्रकार है—

इय पणमिय जिणणाहे गणणाहे तह ये चेव मुणिणाहे।
सम्मत्तसुद्धिहेउं वोच्छं सम्मत्तमहियारं॥ २॥
(क.पा./भाग १२/पृ.१९३)।

वैसे वर्तमान में त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ जिस रूप में पाया जाता है, वह संग्रहग्रन्थ न होकर एककर्तृक होगा, यह मानना बुद्धिग्राह्य नहीं प्रतीत होता और इसीलिए जय-धवला की प्रस्तावना (पृ.६१, टिप्पणी) में यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया गया है कि "वर्तमान में त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ जिस रूप में पाया जाता है, उसी रूप में आचार्य यतिवृषभ ने उसकी रचना की थी, इस बात में हमें सन्देह है।"

फिर भी जयधवला सम्यक्त्व-अधिकार की उक्त मंगलगाथा का '**चुण्णिस्सरूव**' इत्यादि गाथा के साथ **त्रिलोकप्रज्ञप्ति** ग्रन्थ के अन्त में पाया जाना इस तथ्य को अवश्य

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ही सूचित करता है कि इस ग्रन्थ के साथ आचार्य यतिवृषभ का किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य ही होना चाहिए। बहुत सम्भव है धवला में जिस त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ का उल्लेख पाया जाता है, उसकी रचना स्वयं यतिवृषभ आचार्य ने की हो और उसको मिलाकर वर्तमान त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ का संग्रह किया गया हो। अन्यथा उक्त मंगलगाथा को वहाँ लाकर रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उक्त गाथा के साथ वहाँ जो **'चुण्णिस्सरूव'** इत्यादि गाथा पाई जाती है, उसमें आये हुए **चुण्णिस्स** पद से भी इस तथ्य को समर्थन होता है।

आचार्य वीरसेन ने अपनी जयधवला टीका में और इन्द्रनन्दी ने अपने श्रुतावतार में इसकी चर्चा नहीं की, इसका कारण है। बात यह है कि कषयप्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रों की टीका का नाम जयधवला है, अतः उससे सम्बन्धित तथ्यों का ही खुलासा किया गया है। यही स्थिति श्रुतावतार में इन्द्रनन्दि की भी रही है। अतः इन दोनों आचार्यों ने यदि अपनी-अपनी रचनाओं में आचार्य यतिवषृभ की रचनारूप से **त्रिलोक-प्रज्ञप्ति** ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया, तो इससे उक्त तथ्य को फलित करने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती।

२. इनद्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार में आचार्य गुणधर और आचार्य धरसेन को लक्ष्यकर लिखा है—

गुणधरधसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात्॥ १५१॥

गुणधर और धरसेन के अन्वयस्वरूप गुरुओं के पूर्वापर क्रम को हम नहीं जानते, क्योंकि उनके अन्वय अर्थात् गुरुजनों का कथन करनेवाले आगम (लिखित) और मुनिजनों का अभाव है।

आचार्य वीरसेन ने भी श्रीधवला में धरसेन आचार्य का और श्रीजयधवला में गुणधर आचार्य का बहुमान के साथ उल्लेख किया है। किन्तु उन्होंने उनकी गणना पट्टधर आचार्यों में न होने से उनके गुरुओं का उल्लेख नहीं किया है। यह सम्भव है कि इसी कारण से इन्द्रनन्दी ने अपने श्रुतावतार में उक्त वचन लिखा है।

किन्तु इन दोनों स्थलों को छोड़कर अन्यत्र इन दोनों आचार्यों का तथा पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य का नामोल्लेख न मिलने का कारण यह है कि एक तो दिगम्बर-परम्परा में इस तरह के इतिहास के संकलित करने की पद्धति प्रायः इन आचार्यों के बहुत काल बाद प्रारम्भ हुई। कारण वनवासी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु होने के कारण वे सब प्रकार की लौकिक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर अपना शेष जीवन स्वाध्याय, ध्यान, अध्ययन में ही व्यतीत करते रहते थे। कदाचित् ग्रन्थादि के निर्माण का विकल्प होने

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पर उनकी रचना करते भी थे, तो उसमें नामादि के ख्यापन की प्रवृत्ति का प्रायः अभाव ही रहता था। यही कारण है कि पूर्व आचार्यों की सभी कृतियाँ प्रायः प्रशस्तियों से रहित पाई जाती हैं। एक तो इस कारण से उक्त आचार्यों के नामों का उल्लेख अन्यत्र कम दृष्टिगोचर होता है।

दूसरे, ये कर्मसिद्धान्त जैसे सूक्ष्म और गहन दुरूह अर्थवाले विषय का प्रतिपादन करनेवाले पौर्व ग्रन्थ हैं। इनका अवधारण करना मन्दबुद्धिजनों को सुगम न होने से अन्य साहित्य के समान इनका सर्वसुलभ प्रचार कभी भी नहीं रहा। गृहस्थों की बात तो छोड़िये, मुनिजनों में भी ऐसे मेधावी विरले ही मुनि होते आये, जो इनका सम्यक् प्रकार से अवधारण करने में समर्थ होते रहे। इसलिए भी इनके रचयिता आचार्यों का नामोल्लेख अन्यत्र कम दृष्टिगोचर होता है। यह तो गनीमत है कि दिगम्बरपरम्परा में इनका इतना इतिहास मिलता भी है। श्वेताम्बरपरम्परा तो आचार्य गुणधर और यतिवृषभ के नाम भी नहीं जानती। इतना ही क्यों, उस परम्परा में **कर्मप्रकृतिचूर्णि, सप्ततिका, शतक** तथा उनकी **चूर्णि** आदि कतिपय जो भी कर्मविषयक मौलिक साहित्य उपलब्ध होता है, उसका तो इतना भी इतिहास नहीं मिलता। प्रामाणिक ऐतिहासिक दृष्टि से, कल्पित अनेक उल्लेख न मिलने की अपेक्षा प्रामाणिक एक-दो उल्लेखों का मिलना उससे कहीं अधिक हितावह है।

३. श्रीजयधवला में आचार्य गुणधर के, पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता होने पर भी, उन्हें वाचक कहने में विसंवाद की कोई बात नहीं है। नन्दिसूत्रपट्टावली में आर्य नागहस्ति को पूर्वधर न लिखकर मात्र विवक्षित पूर्व के एकदेशरूप कर्मप्रकृति में प्रधान कहा गया है। फिर भी उसमें उनके यशःशील वाचकवंश की अभिवृद्धि की कामना की गई है।

उपसंहार

कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि ये दोनों दिगम्बर आचार्यों की अमर कृतियाँ हैं, इस विषय में पूर्व में हम सप्रमाण ऊहापोहपूर्वक संक्षेप में जो कुछ भी लिख आये हैं, उन सबका यह उपसंहार है—

१. कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि के रचनाकाल से लेकर उनकी महती टीका जयधवला के रचनाकाल तक और उसके बाद भी दिगम्बरपरम्परा में उक्त ग्रन्थ-रत्नों का बराबर पठन-पाठन होता आ रहा है। यह इसी से स्पष्ट है कि उन पर दिगम्बर आचार्यों द्वारा अनेक उच्चारणाएँ और पद्धति प्रभृति टीकाएँ लिखी गई हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तथा उन्हीं के आधार से सबके अन्त में जयधवला टीका भी लिखी गई है तथा वर्तमान समय में उनका हिन्दी में रूपान्तर भी हो रहा है।

२. जयधवला में उल्लिखित अंग-पूर्वधारियों की परम्परा से ज्ञात होता है कि दिगम्बरपरम्परा में तीर्थंकर भगवान् महावीर से लेकर जो परम्परा पाई जाती है, उसी परम्परा में किसी समय ये आचार्य हुए हैं। अपने श्रुतावतार में इन्द्रनन्दी ने भी इसे स्वीकार किया है।

३. इन ग्रन्थरत्नों की भाषा, रचनाशैली और शब्दविन्यास आदि का क्रम दिगम्बर-परम्परा के एतद्विषयक अन्य साहित्य के ही अनुरूप है, श्वेताम्बर-परम्परा के साहित्य के अनुरूप नहीं।

४. दि० आचार्यों की मालिका में **गुणधर** और **यतिवृषभ** दो आचार्य भी हुए हैं। तथा उन्होंने **कषायप्राभृत** और उसकी **चूर्णि** की रचना की थी, आनुपूर्वी से इसकी अनुश्रुति दिगम्बर-परम्परा में रही आई, श्वेताम्बर-परम्परा इस विषय में बिल्कुल अनभिज्ञ रही। यह निष्कारण नहीं होना चाहिए। स्पष्ट है, श्वेताम्बर-परम्परा ने इन दोनों अनुपम कृतियों को श्वेताम्बर-परम्परा के रूप में कभी भी मान्यता नहीं दी।

५. **शतक** और **सप्ततिका** आदि में २-४ उल्लेखों द्वारा जो **कषायप्राभृत** का नामनिर्देश पाया जाता है, वह केवल विषय की पुष्टि के प्रयोजन से ही पाया जाता है। उसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।

स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि दिगम्बर आचार्यों की अमर रचनाएँ हैं। (**लेख समाप्त**)

इस प्रकार माननीय पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य ने इस लेख में सप्रमाण सिद्ध किया है कि कसायपाहुड दिगम्बराचार्य की ही कृति है। इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि उसे श्वेताम्बरपरम्परा, यापनीयपरम्परा या श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये गये हेतु असत्य या हेत्वाभास हैं।

शब्दविशेष-सूची

द्वितीयखण्डान्तर्गत अष्टम अध्याय से लेकर द्वादश अध्याय तक आये विशिष्ट शब्दों (व्यक्तियों, स्थानों, ग्रन्थों, लेखों, अभिलेखों, कथाओं, सम्प्रदायों, गणगच्छों इत्यादि के वाचक तथा पारिभाषिक शब्दों) की सूची नीचे दी जा रही है। इसमें पादटिप्पणीगत शब्द भी समाविष्ट हैं। दो पृष्ठांकों के बीच में प्रयुक्त योजक-चिह्न (—) बीच के पृष्ठों का सूचक है।

अ

अकर्मक (कर्मरहित) ३६३

अकलङ्कग्रन्थत्रय ५२४

अकलङ्कदेव (भट्ट) ३४, ४४, १८८, ५२६, ६८९-६९३

अकालवर्ष पृथ्वीवल्लभ राजा (कृष्ण तृतीय) २८४, २८५, २८६

अकालवर्ष-पृथुवीवल्लभ का मंत्री २८३

अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद् ६८६

अंगुत्तरनिकायपालि १०७, ११५ १४०, ३१०, ३१२, ३२०-३२२, ३२४, ३२५, ३३०

अंगों और पूर्वों का एकदेश २४०, ७३४

अङ्गोपाङ्गनामकर्म (पुरुषांगोपांग, स्त्र्यंगोपांग, नपुंसकांगोपांग) ६३५, ६३६

अचेलपरम्परा : ७०८

अजय, अजत (अविरत—श्वे.) ७६७

अजित तीर्थंकर (पुराणतिलकम् : महाकवि रन्न) १११

अजितप्रसाद जैन (सम्पादक-शोधादर्श) : १४८

अजिनोक्त-सवस्त्र-साधुलिंगी भट्टारक ५४-११०

अज्ञातपूर्वधर आचार्य (श्वे. जीवसमास के कर्त्ता) ४३४

अद्धासमय (काल) ३६४

अद्वैतवाद ३३३

अद्वैतानन्द ३३४

अध्यात्मवाद (निश्चयप्रधान) ३३४

अनगारधर्मामृत (पं० आशाधर) ६०१

— भव्यकुमुदचन्द्रिकाटीका ७९

— ज्ञानदीपिका पंजिका ६०२

अनन्तवियोजक ३७१, ३७२, ३७७, ३८२

अनन्तवियोजक असंयतसम्यग्दृष्टि ३७८

अनादिमिथ्यादृष्टि को सीधे अप्रमत्त गुणस्थान की प्राप्ति ३८१

अनिश्चयवाद (संजय बेलट्ठपुत्त का मत) ४४३

अनुयोगद्वारसूत्र ५६०, ५५८

अनेकान्त (वस्तुधर्म) ३३९, ४५०

अनेकान्त (मासिक पत्र) ११२, १९७, २१८, २३९, २६३, ५१७, ५२१, ५५०,

५६८, ६२८, ६९३, ८४८, ८५५, ८७०, ८७५, ८७६, ८८१
अन्तदीपकन्याय ४०३
अन्तर २४, २५
अन्यलिंगिमुक्ति-निषेध (देखिये, परतीर्थिक-मुक्ति-निषेध)
अपगतवेदी ७१४
अपगतवेदत्व ७२४, ७५३
अपभ्रंशप्रयोग ४८५-४८८
अपभ्रंशीकरण २७१
अपराजितसंघ ४१
अपराजितसूरि (विजयोदयाटीकाकार) २७६, २७७
अपर्याप्तक ५८२, ५८३
अपवाइज्जमाण (अप्रवाह्यमान) ७३८, ७४०, ७७९, ७८०, ७८१
अपवाद (आपवादिक) लिंग—भ्रष्ट दिगम्बरजैन मुनि का अस्थायी सचेललिंग ६००
अप्रशस्त उपशम ३७४-३७६
अभिधान राजेन्द्र कोष २३४, ४२९
अभिनवधर्मभूषण यति ७४३
अभूतार्थनय २०७
अभेदवाद (एकोपयोगवाद) : (देखिये, केवलि-उपयोगद्वय)
अमितसेन (पुन्नाटसंघाग्रणी) ३१०
अमृतचन्द्र आचार्य १८५, १८६, १८८, १८९, ३३९, ३४७, ३५१
अमोघवर्ष (सम्राट्) ५३
अय्यावले ५०० (व्यापारियों का महासंघ) ९९
अर्धफालक (साधु, संघ, सम्प्रदाय) ५६८
अर्हत् ऋषि ५९१
अर्हद्बलि (एकांगधारी) ३६, ४४, ३११, ७२६
अल्तेम-अभिलेख ३५
अवसन्न (भ्रष्ट दि० जैन मुनि) ६०१
अव्याकृतवाद (बुद्धदर्शन) ४४४
अविनीत (कोङ्गणिमहाधिराज) २६१, २८३, २८४, २८६
अशुभपरिणाम ४८०
अशोक-स्तम्भलेख ४८५, ४८६
अष्टशती (अकलंकदेव) ५२६, ५२७
अष्टसहस्री (विद्यानन्द स्वामी) ५०८
अष्टाध्यायी (पाणिनि) १८१

आ

आगमविच्छेद श्वेताम्बरपरम्परा में भी : ४६८
आचारांग ५८५
— शीलांकाचार्यवृत्ति ५१३, ५३३, ५९७
आचारांगनिर्युक्ति ४१२, ४१४, ४१५, ५३२, ५५७, ५५९
आचार्य (तृतीय परमेष्ठी) ११९
आचार्य (सेवक) ३१, ३२
आचार्य-पदस्थापना-विधि १२२
आचार्यभक्ति (कुन्दकुन्द) ४७८
आचार्य-मतभेद ७५६-७५८
आतुरप्रत्याख्यान (वीरभद्र) २१७, २७५, ५७५
आत्मवाद ३३४
आत्माद्वैत ३३३
आत्मनिरूपण ४७२

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आत्माराम (उपाध्याय, श्वे. मुनि) ३६२
आदिपुराण ६१, १८४, १८६
आदिसागर आचार्य, अंकलीकर ११५
आध्यात्मिक विकासक्रम ३८५, ३८६
आध्यात्मिक विशुद्धि की अवस्थाएँ ३९०
आप्तपरीक्षा (विद्यानन्द स्वामी) ५०२, ५२२
आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) ५०५, ५०८, ५२३, ५२७
आरातीय ४९३
आरातीयसूरि-चूडामणि (अपराजितसूरि की उपाधि) ४९३
आराधना ४९२
आराधनाकथाकोश (नेमिदत्त) ४९८, ५००
आराधनानिर्युक्ति २००
आर्यकृष्ण (बोटिक शिवभूति के गुरु) ५१०
आर्यकुल-भद्रान्वय ४१७
आर्यनन्दिल (श्वे.) २४१
आर्यभद्र ४१४, ४१६
आर्यमंक्षु-नागहस्ती (दिगम्बर) २४०, २४१, ७१३, ७१५, ७२०, ७३०, ७३१, ७३४, ७३७, ७५६
आर्यमंगु- आर्यनागहस्ती (श्वे.) २४१, ७१३, ७३६, ७३७
आर्यरक्षित (श्वे. आचार्य) २४१
आर्य श्याम (प्रज्ञापनासूत्र के कर्त्ता) ७२०
आवश्यकचूर्णि ५८५, ६१४, ६१६, ६३७
आवश्यकनिर्युक्ति (भद्रबाहु-द्वितीय, श्वे.) ४१५, ४९४, ५०३, ५२५, ५२८, ५२९, ५३१, ५३२, ५६२, ५७५, ५८५, ६१६
— हारिभद्रीयवृत्ति ५८९, ६१७
आवश्यकमूलभाष्य ४९०, ४९१, ४९४, ५०१
आवश्यकसूत्र-चूर्णि ५०१
आशाधर (पण्डित) ४०
Aspects of Jainology
— Vol. II ३२९
— Vol. III १८६, १८७, २८६, ४५२-४५६, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६४-४६८, ४७२, ४७३, ४७७, ४७९, ४८२, ४८३

इ

इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (The Indian Antiquary)
— Vol. XX (October, 1891) ६, ७, ९, १२, १४-३०, ४५, ४६, ४८, ४९, १९६, १९७, २३९, २९२, ३२५, ३२६
— Vol. XXI (March, 1892) १८-२२, २८-३०, ३२
— Vol. XIV (January, 1885) २६१, २९२
इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली ४३
Indian Philosophy, Vol. II, (S. Rādhākrishṇan) : ४४६
इन्द्रनन्दी (श्रुतावतारकर्त्ता) १८३, १८६, १९०
इष्टोपदेश (पूज्यपाद स्वामी) २६६, ४७१, ४७४

इसिभासिय (ऋषिभाषित) ५९०

ई

ईशावास्योपनिषद् ४४९

उ

उच्छेदवाद ३४२
उज्जयिनी नगरी ८
उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ (परम्परा, सम्प्रदाय) ५४३ (निर्ग्रन्थ शब्द से अभिप्राय), ५४४-५४८, ५६६, ५७९, ७१३, ७१५, ७१६, ७१९, ७२०, ७३६, ७४३, ७६०
उत्तराध्ययनसूत्र २३७, ३६४, ५८५, ५९०, ६६१
उदयचन्द्र जैन (प्रो०) ६६१
उपदेशतरङ्गिणी (हरिभद्रसूरि) ५९०
उपाध्याय (परमेष्ठी) ११९
उपाध्यायपद-दानविधि १२१
उपासकाध्ययन २८०
उमास्वाति ३७, ४४, १८६, २३९
उमास्वामी (उमाप्रभु) ७, १५, ४७
उमास्वामि-श्रावकाचार (भट्टारकीय ग्रन्थ) १३७
उपपाद ६४३
उपशम (प्रशस्त, अप्रशस्त) ३७४
उपकप्पेंति (उपकल्पयन्ति) ८६८, ८६९
उव्वलण (उद्वलन) ७६५

ऊ

ऊर्जयन्तगिरि (गिरनार पर्वत) ३२, ३३
ऊर्जयन्तगिरि-विवाद ३३

ऋ

ऋग्वेद ३०२, ३०३, ३३५, ४४३
ऋद्धिधारी जिन ५९५
ऋषिभाषित (देखिये, 'इसिभासिय')
ऋषिमण्डलसूत्र ५०३

ए

एकान्त (ऐकान्तिक) अचेलमुक्तिवादी (अचेलमार्गी) निर्ग्रन्थसंघ (मूलसंघ, दिगम्बरपरम्परा) ५६८, ५७४, ७१३
ए० चक्रवर्ती नयनार (प्रोफेसर) १९५
ए० एन० उपाध्ये (आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, डॉ०, प्रो०) २१८, ३०१, ५५२, ७४२
एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन ५३७
एरडु कट्टे वस्ति-मण्डप-स्तम्भ-अभिलेख ३५
एलवाचार्य २८८, ४५९
एलवाचार्यगुरु ४६०-४६३
एलाचार्य (कुन्दकुन्द) ३६, ४५९-४६२

ऐ

ऐहिककर्म (ज्योतिष, मन्त्रतन्त्र, वैद्यक आदि) ६०

ओ

ओसण्ण (अवसन्न = पासत्थादि पाँच भ्रष्ट मुनियों में से एक) ५८, ५९

क

कंजीपुरम् २९६
कठोपनिषत् ४४९
कड़ब (कड़प) दानपत्र (अभिलेख) ३५, ५४६, ५६५, ५६६
कण्डूर् (काण्डूर, काडूर) गण १११, ११२
कण्ह श्रमण ४९२
कत्तिले बस्ती स्तंभलेख ३९
कन्नड़लिपि ६८५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कपिल खुड्डक (क्षुल्लक = नवदीक्षित युवा साधु, श्वेताम्बर) ६४०, ६४१
कम्भ (राष्ट्रकूट नरेश) २८८
कम्मपयडीचूर्णि (श्वे०) ७१९
करकंडुचरिउ (कनकामर मुनि) ५००
कर्तृत्व-अकर्तृत्व ३४८
कर्मदहनव्रत १२५, १२६
कर्मप्रकृति (श्वे.) ७५०, ७५१, ७६५, ७६९
कर्मप्रकृतिचूर्णि (श्वे०) ७६६, ७६८, ७६९, ७७६
कर्मप्रकृतिप्राभृत २४७
कर्मबन्धप्रत्यय ५९२
कर्मसिद्धान्त ६०६
कल्पसूत्र ६१४
— भाषानुवाद : आर्यारत्न सज्जनश्री ६१५
— कल्पप्रदीपिकावृत्ति ६०८
— कल्पलताव्याख्या ६०६, ६१६, ६१७
— स्थविरावली (थेरावली) ४९१, ५१०, ५४७
कल्याणविजय (श्वे० मुनि) ३, २४१, २९०, २९१, ३०१, ४९०, ७४५
कल्लूरगुड्डु-अभिलेख ३९
कषायप्राभृत दिगम्बराचार्यों की ही कृति है (लेख—पं० फूलचन्द्र शास्त्री) ७६१
कसायपाहुड (कषायप्राभृत) १८१, २४१, २४२, २८९, ७१३-७२७, ७३९ (भाग १६), ७४८ (भाग १), ७५० (भाग १३), ७५२, ७५८ (भाग २), ७६१, ७६२ (भाग १), ७६३ (भाग १, भाग २, भाग ८), ७६४ (भाग १) ७६५ (भाग १५), ७७१ (भाग १५), ७८४ (भाग १२)
— चूर्णिसूत्र २४०, ७१५, ७१९, ७३४, ७३९, ७५०, (भा. १४), ७६७ (भा. १५) ७६८, ७६९, ७७०, (भा. १५) ७७२ (भा. १), ७७३ (भा.१, ८, १२,), ७७६, ७७७
— प्रस्तावना (भा.१) ५२, ३०२, ३०४, ३०५, ३०८, ७३८, ७४६, ७४९, ७५१, ७५२, ७५७, ७५८
— सम्पादकीय वक्तव्य (भाग १/ पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री) ७३९, ७४०
कसायपाहुडसुत्त ७६९
— प्रस्तावना (पं० हीरालाल शास्त्री) ७४८, ७५२
कार्त्तिकेयानुप्रक्षा ५८१
कालगणना (वीरनिर्वाणानुसार) ३०७, ३०८
काललब्धि ३७९
कालवङ्गग्राम २९१
काव्यप्रकाश (मम्मट)६४५
किषु-वेक्कूर (ग्राम) २८७
कीथ (Keith) ए. बी. ४४६
कुण्डकुन्दपुर ३११, ५५२
कुण्डलपुर (दमोह, म.प्र.) ८
कुदेव ६०१, ६०२
कुन्दकीर्ति (परिकर्म-टीकाकार) ५५२
कुन्दकुन्द आचार्य ३, ७, १५, ३०, ३६, ३७, ४४, ४७, ५९, ६०, १०९, १८१, १८३-१८९, १९१, १९५, १९७, २०१, ४५५-४६९, ४७९, ४७१-४७९, ४८१-४८५, ४९०, ५३७, ५३८, ५५१, ५५२-५५४ (परिकर्मटीका-कार), ५५५-५५६

(षट्खण्डागम-रचनाकाल से उत्तर-वर्ती), ५९९, ६००
कुन्दकुन्द का मनगढ़ंत जीवनवृत्त ३१८-३२४
कुन्दकुन्द की गुरुपरम्परा ३११
कुन्दकुन्दान्वय १२, १४, ३५-३९, १८८, १८९, २३९, २८३, २८४, २८५, २८८, ३०७, ४५५
कुन्दकुन्दान्वय की पट्टावली ४५
कुन्दकुन्दाचार्याम्नाय ३३
कुन्दकुन्दश्रावकाचार (भट्टारकीय ग्रन्थ) १३७
कुन्दकुन्दसन्तान ३९
कुन्दसेठ-कुन्दलतासेठानी (आचार्य कुन्द-कुन्द के कल्पित माता-पिता) ३१८
कुन्दकुन्द का समय २९, १९५-५४०
कुन्दकुन्दसाहित्य ४८२
कुप्पुटूरू-अभिलेख ३८
कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव ४५८, ४५९
कुमारपुर (ग्राम) २८५
कुलिंग ६०१, ६०२
कुलिंगी (तापसादि, पार्श्वस्थादि) ५९७, ६०१, ६०२
कुशील (कुसील) मुनि—प्रसेनिकाकुशील, अप्रसेनिकाकुशील, निमित्तकुशील, आजीवकुशील, कक्वकुशील, प्रपातनकुशील, कौतुककुशील, भूतिकर्मकुशील, कुहनकुशील, सम्मूर्च्छनाकुशील ५५-५७, ६०१
कुष्माण्डिनीदेदवी ९५
कुसुम पटोरिया (डॉ०, श्रीमती) ७५६
कूर्चक (एक जैन सम्प्रदाय) २९१
कूर्मापुत्र ६२०, ६२४
के० बी० पाठक (डॉ०) २९०, २९२
के० आर० चन्द्र (डॉ०) ४८५
केवलि-उपयोगद्वय
— क्रमवाद, क्रमपक्ष ५२४-५२८
— क्रमवाद-पुरस्कर्त्ता : श्वे. भद्रबाहु द्वितीय (आवश्यकनिर्युक्ति) ५२४, ५२५, ५२६, ५२८, ५३५
— युगपद्वाद, यौगपद्यवाद, युगपत्पक्ष ५२४-५२८, ५३५
— अभेदवाद, अभेदपक्ष, एकोपयोगवाद ५२४-५२७, ५३५
केवलिनी (श्वे०) ६१७
केशव वर्णी (गोम्मटसार की जीवतत्त्व-प्रदीपिका नामक कर्णाटवृत्ति के कर्त्ता) ६९६
कैलाशचन्द्र शास्त्री (पं०) १३३, ३०४, ५५३, ७४९, ७५७
कोन्नूर-शिलालेख ३८
कोल्हापुर (कोल्लापुर) ८३, ९६
कोल्हापुर-शिलालेख १०५
कौण्डिन्य-कोट्टवीर ४९७, ५६५
क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक है? (लेख—पं० दरबारीलाल जैन कोठिया) ५२१
क्राणूर् (काणूर्) गण (दिगम्बरसंघ) ३८, ३९, १११, ११२
क्षपणा ३७३
क्षपणासार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) ११३
क्षेत्रपाल-पद्मावती १२४

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ख

खवगसेढी (श्वे० मुनि श्री गुणरत्नविजय) ७६१, ७६४, ७८३

खुड्डुक, खुड्डुग (क्षुल्लक = नवदीक्षित युवा साधु—श्वे०) ६४०

ग

गजसिंह राठौड़ ३१७

गणधर ७३३

गणधर (आचार्य) ११९

गणेशप्रसाद जी वर्णी (पण्डित) ६८६

गण्डादित्य, गण्डरादित्य (राजा) ८२, ८३-९१, ९३, १००

गमकगुरु (परम्परागुरु) १८२, ५३८, ५४०

गुण (गुणस्थान) २३६

गुणचन्द्र भटार ३७

गुणट्ठाण (षट्खण्डागम) २३६

गुणधर (आचार्य) १८१, २४०, ३३२, ७१३, ७१५, ७३०, ७३१

गणधर-मुखकमल-विनिर्गत ७३४

गुणन्धर (आर्य) ७५६, ७५७

गुणभद्र (आचार्य) १८३, १८५

गुणश्रेणिनिर्जरा (असंख्येय-गुण-निर्जरा) ३७१, ३७२, ३७८

गुणश्रेणिनिर्जरा का काल ३७९

गुणश्रेणिनिर्जरासूत्र ३७१, ३८३, ३८४, ३८९, ३९०-३९३

गुणश्रेणिनिर्जरास्थान ३७१, ३७२, ३८५, ४११, ६०५

गुणस्थान ३७२, ३८९, ४०३, ५९१

गुणस्थान : ज्ञानदर्शनचारित्ररूप जीवस्वभाव-विशेष ४२९

गुणस्थान : दर्शनज्ञानचारित्ररूप परम्परा ३९०, ४१९

गुणस्थान : परमप्रासाद-शिखरारोहण-सोपान-कल्प ४२९

गुणस्थाननाम-सदृश नाम (भगवतीसूत्र और प्रज्ञापना में) ४३१, ४३२

गुणस्थान मोक्ष के सोपान ३९०, ४१८

गुणस्थानविकासवाद (वादी) ३७१, ३६९, ३८४, ३८५, ३८८, ३८९, ३९१, ३९२, ४११

गुणस्थानसिद्धान्त ३८१, ५८४, ५८६-५८८, ६०६, ६१४, ७१४, ७२३

गुणस्थानसिद्धान्त : एक विश्लेषण (डॉ० सागरमल जैन) ३७७, ३८१, ३८५, ४१५, ५५६

गुणस्थानों के ज्ञाता तीर्थंकर ४२६

गुप्तिगुप्त (नामान्तर—अर्हद्बलि, विशाखाचार्य) ७, १४, २६, २७, ४७, ३११

गुरु को कन्धे पर बैठाकर ले जानेवाला शिष्य ६१८

गुरुपर्वक्रमवर्णनम् (गुणरत्नसूरि) ४९९

गृध्रपिच्छ (आचार्य, तत्त्वार्थसूत्रकार) ३६, १८१, १८८

गृहस्थ (गृहलिंगी)-मुक्तिनिषेध ६०४

गृहिलिङ्ग-सिद्ध मरुदेवी-प्रभृति (श्वे०) ६१६

गोम्मटसार ९३

गोम्मटसार कर्मकाण्ड ११२, ११३, ३७७, ६५०

— जीवतत्त्वप्रदीपिका-टीका ७०३

— संस्कृतटीकाकार-प्रशस्ति (गो.का. / भाग २) ६९६

— जीवकाण्ड ११३, ३९४, ५८२, ६३४, ६७७
— जीवतत्त्वप्रदीपिकाटीका ३९४, ४१९, ६३३, ६४२, ६९६, ६९७
— प्रस्तावना (पं० कैलाशचन्द्रशास्त्री— जीवकाण्ड/भाग १) ६९६
गौडपाद (शंकराचार्य के गुरु) ४७२, ४७५
ग्रन्थपरीक्षा (पं० जुगलकिशोर मुख्तार) १३७

च

चन्दणन्दिभटार २८३, २८४, २८७
चन्दना-मृगावती ६१६-६१८, ६२३
चन्देरी (बुन्देलखण्ड) ८
चन्द्रगुप्त मौर्य (सम्राट्) ४४, ५३७, ५३९
चन्द्रर्षि महत्तर (श्वे०) ७५२
चर्चासागर (भट्टारकीय ग्रन्थ) १३२, १३७
चामुण्डराय (गंगनरेश राजमल्ल के महामंत्री) ९३
चामुण्डरायपुराण (त्रिषष्टिलक्षण महापुराण) ९३
चारणार्द्धि (कुन्दकुन्द) ३५
चारित्तपाहुड २०२, २११, २२०, २८०, ४२१
चारित्र ६०४
— सामायिक (गुणस्थान ६, ७, ८, ९)
— छेदोपस्थापना (गुण० ६, ७, ८, ९)
— परिहारविशुद्धि (गुण० ६, ७)
— सूक्ष्मसाम्पराय (गुण० १०)
— यथाख्यात (गुण० ११, १२, १३, १४) ६०४
चारित्रवृद्धि गुणस्थानक्रम से ६०४
चारुकीर्ति भट्टारक ९५, ९६, १४८
चित्तौड़ ९
चित्रकूटपुर १८३
चिदरवल्लि-अभिलेख ४३
चिमनलाल पण्डित (जयपुर) २२
चैत्यगृह-प्रतिमादि ३०४

छ

छान्दोग्योपनिषद् ३३५, ४४३

ज

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (जंबुदीवपण्णत्ती) १८६, ३२७, ३२८
जम्बूस्वामी ५६७
जम्बूस्वामिचरित्र ५२०
जयधवलाटीका ५३, २४०, २७८, २८२, ३७३, ६५१, ६८१, ६८२, ७००, ७०१, ७२७, ७३१, ७३४, ७३५, ७३८, ७७०
जयसागर मुनि (भट्टारकपट्ट पर अभिषिक्त) ११५
जयसेन आचार्य १८४, १८८, १९०, २९३, २९६, २९७
जहाछंद (यथाछन्द = पासत्थादि पाँच भ्रष्ट मुनियों में से एक) ५९
जिनचन्द्र प्रथम (दि० आचार्य) ७, १४, ४७, ३११
जिननन्द गणी (आर्य) ४९२
जिनपालित ३११
जिनप्रतिमाभास ६०१
जिनमूर्ति-प्रशस्तिलेख (कमलकुमार जैन) ३३, ३४, ३६, ६३ ६४
जिनलिंग ५९८
जिनलिंगकृत पाप ६२
जिनलिंगाभास ५९८, ६०१, ६०२

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जिनसेन आचार्य (हरिवंशपुराणकार) ३१०
जिनसेन आचार्य (आदिपुराणकार) १८३, १८६, २४२
जिनसेननाम-तृण २७
जीवनिकाय २३६, २३७
जीवसमास (गुणस्थान) २३६
जीवसमास (श्वे० ग्रन्थ) २१७, ३७०, ३७१, ४०३, ४२६, ४३१, ४३३, ४३४, ४३५, ४३७, ५८५, ५८८, ६२८, ७४८, ७४९
जीवस्थान (चौदह जीवसमास) २३६
जीवाभिगम ५८५
जुगलकिशोर मुख्तार (पं०) ३५, १९५, २४२, २४४, २९०, २९३, २९९, ५४०, ५५०, ५६८
Gender And Salvation (Padmanabh S. Jaini) ६३१, ६६१-६६४, ६६६
जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा (देवेन्द्रमुनि शास्त्री) २१६, ५१४, ५७५
जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय (लेख—प्रो० हीरालाल जैन) ४८९, ४९७, ५१६, ५१७, ५२१
जैनदर्शन (पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य) ४५१
जैनधर्म (पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री) १३४
जैनधर्म का मौलिक इतिहास (आचार्य हस्तीमल)
— भाग २ : ३११, ३२२
— भाग ३ : ५, ६, ११, १२, ८२, ९६-९९, १०१, ३२२
— भाग ४ : ३१७, ३२४
जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय (डॉ० सागरमल जैन) २१६, २३२, २७५, ४१७, ५४३-५४९, ५५६, ५५७, ५६३, ५६५, ५६७-५७१, ५७३, ५७४, ५७५, ५७८, ५८४, ६७२, ६७९, ६८०, ६८५, ७१३-७२१, ७३०, ७३३, ७३५, ७३६, ७४२, ७४३, ७४७, ७४८, ७५२-७५६, ७६०
जैनधर्म की ऐतिहासिक विकास यात्रा (डॉ० सागरमल जैन) ७०६
जैन निबन्ध रत्नावली (मिलापचन्द्र कटारिया)
— भाग १ : १०१
— भाग २ : ७२
जैन भारती (कविवर गुणभद्र) ८०
जैन शिलालेख संग्रह (मा.च.)
— भाग १ : ३५-३७, ३९, ४०, ४२, ४४, १७८, २३९, ४९३, ४९७-४९९, ५०३, ५०७, ५१२, ५१४, ५३७, ५३९, ५६३
— भाग २ : ३३, ३५, ३७-३९, २८४, २८७, २९५, ३०६, ५६५, ५६६
— भाग ३ : ३५-३८, ४४, १०५, १०६, ११२, २८४, २८८, २९१, ४६१, ४६२
— भाग ४ (भा. ज्ञा.) : ४५९, ४६०, ५६५
जैनश्रमणाभास ६००
जैन साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी)
— प्रथम संस्करण ४९३
— द्वितीय संस्करण ४०
जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश (प्रथम खण्ड, जुगलकिशोर मुख्तार) २८३, २९९, ३००, ५४०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जैन साहित्य का इतिहास (पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री)
— भाग १ : ७३१, ७३७, ७५८
— भाग २ : २९६, ५७६
जैन साहित्य में विकार (पं० बेचरदास) ६२०
जैनसिद्धान्त भास्कर (मासिक पत्र) ७३, २४२ ३२७, ५५३
जैन हितैषी (मासिक पत्र) ६९, ७०, ७४, ७६-८०, ८२, १३६
जैनाचार्य-परम्परा-महिमा (रचयिता—श्रवणबेलगोल के ३१वें भट्टारक श्री चारुकीर्ति) ८२, ८३-८५, ८९-९४, ९६-९८, १११
जैनाभास (गोपुच्छक आदि पाँच) ६०१
जैनाभास (पार्श्वस्थ आदि पाँच) ५५-५९, ६०१
जैनाभास आहारदान के अयोग्य ६०२
जैनभास-प्रतिष्ठापित-जिनप्रतिमा अवंदनीय ६०१
जैनाभास-लिंग कुलिंग ६०१, ६०२
Jainism In South India & Some Jain Epigraphs ९७
जोइंदुदेव (योगीन्दुदेव) २६२, २६८, २९३, ४७६
जोणिपाहुड (योनिप्राभृत—आचार्य धरसेन) ५४३, ५४७, ५५०, ५६८
जोहरापुरकर (विद्याधर, डॉ०, प्रो०) २२, ३३, ३४
ज्ञाता-(ज्ञातृ)-धर्मकथांग ३६४, ५५७, ५८३, ६०६, ६१३, ६१४, ६२४, ६३६
ज्ञानप्रबोध (ग्रन्थ) ३२८
ज्ञानप्रवाद (पंचम पूर्व) २४०
ज्ञानबिन्दु (उपाध्याय यशोविजय)—प्रस्तावना (पं० सुखलाल संघवी) ५२६, ५२८
ज्ञानप्रवाद—पंचमपूर्व की दसवीं वस्तुसम्बन्धी कषायप्राभृत ७३४
ज्ञानमती (आर्यिकारत्न) २२०
ज्ञानसागर (आचार्य) २९०

ट

ट्ठाण (गुणस्थान) २३६

ड

डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ २७५, ४६९, ५१४, ५९०

ढ

ढंढण ऋषि ६१८

त

तत्त्वार्थ (तत्त्वार्थसूत्र) ११२, १८८, १९१, २०८-२१४, २२९-२३८, ३५०, ३६३, ३६५, ३६९, ३७१, ३८६, ३८८, ३८९, ३९५-३९९, ४०३-४१२, ४२५, ४३०, ४४०, ४७३, ४८२, ५०६, ५५६, ५५७-५६२, ६०७, ६२१, ६२६
तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति (सिद्धसेनगणी) ३७७, ४०७, ६४०, ६४२
तत्त्वार्थराजवार्तिक (तत्त्वार्थवार्तिक) ३७१, ४३६, ५२६, ५२७, ५७७, ५८७, ६३४, ६४२, ६७६, ६७८, ६९०-६९३, ६९९, ७०२
तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरसूरि) ६००

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तत्त्वार्थसूत्र (विवेचनसहित—पं० सुखलाल संघवी) १८७, २३०, २३१, २३२, ३९५, ४०४
तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय २०८, २०९, २११, २३४, २३५, २३७, २३८, ३६१, ३६५, ५५८, ५६०, ६२८
तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (तत्त्वार्थसूत्र श्वेताम्बर-मान्य) ३५७
तत्त्वार्थाधिगमभाष्य (तत्त्वार्थभाष्य) २१२, २३८, ३४०, ३५०, ३५७, ३८६, ४०३, ५०४, ५६१
तन्त्रान्तर (मतभेद) २४७
तपागच्छपट्टावली ४९७, ४९९, ५००, ५०३
तळवननगर २८३-२८५, २८७, २८८
ताम्रपत्रोत्कीर्ण षट्खण्डागम ६९३
तित्थोगालियपयन्नु (तीर्थोद्गालिक) २०३
तिन्त्रिक (तिन्त्रिणीक) गच्छ ३८
तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) २१५, २४०-२४२, २४४-२४९, २५३-२५७, २५९, २६०, ३०८, ४७४, ४७६, ४८१, ५१९, ५४९, ५७५, ६२८, ७२५, ७८४
तीर्थंकरनामगोत्रकर्म ५९४, ५९५, ६२५
तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा ७, ५०, १७४, १८६, २१७, २३०, २४३, २४४, २४७, २६२, ४७४, ५५०, ५५१, ६९६, ७२७
तेरदाल नगर ९६
तेरापन्थ (दिगम्बर) १२४, १३३, १३७
तैत्तिरीय उपनिषद् ४४३
तोरणाचार्य ३७
त्रिलोकसार ६२८
त्रिवर्णाचार (भट्टारकीय ग्रन्थ) १३२, १३७
त्रिषष्टिपुरुष पुराण ९३
थोण्डमंडलम् २९६

द

दंसणपाहुड (दर्शनप्राभृत) २०१, २०४-२०६, २२०, २२७, ३३८, ३६५, ५९९, ६००
— श्रुतसागरटीका ५१, ६५, ६००, ६०१
— २४ वीं गाथा में अवग्रहचिह्न आवश्यक ६००, ६०१
दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य (पं०) ४९०, ६८९
दर्शनकलाश्री (डॉ०, श्वे० साध्वी) ४२७, ४३१, ४३५, ७०६, ७०७, ७१०
दर्शनसार (आ० देवसेन) १८४, १८६, १९०

दलसुख मालवणिया (पं०) १८७, ३२९, ३४१, ३४६-३४८, ३५१, ३५३
दलिय ७६४
दशवैकालिकसूत्र (श्वे०) ३३१, ३६३, ४८५-४८८, ५८५
दानशाला १०७
दिगम्बरग्रन्थ षट्खण्डागम (षटखण्डागम दिगम्बरग्रन्थ है—डॉ० सागरमल जैन की स्वीकति) ७०६
दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र श्री महावीर जी का संक्षिप्त इतिहास एवं कार्य-विवरण ७५
दिगम्बरमत-विचार (शतपदी—श्वे० मुनि महेन्द्रसूरि) ६६

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिगम्बरजैनसंघ (सम्प्रदाय, परम्परा) २९१
दिगम्बरजैन सिद्धान्त दर्पण
— द्वितीय अंश ४९०, ४९७, ५१७, ६१२, ६१८, ६४८, ६५०
— तृतीय अंश ६११, ६८५
दिग्नाग (बौद्धदार्शनिक) ५३४
दीघनिकायपालि ४४४
दुर्विनीत (गंगवंशी राजा अविनीत का उत्तराधिकारी, पूज्यपाद का शिष्य) २६१
देवगिरि-ताम्रपत्रलेख (श्रीविजयशिवमृगेश-वर्मा) २९१
देवदत्ता वेश्या २७
देवदूष्य वस्त्र ९५०
देवनन्दी, पूज्यपाद स्वामी, (देखिये, 'पूज्य-पाद')
देवरहल्लि-अभिलेख ३५
देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमण ४६८, ५१०
देवसंघ २७, ३४, ४१
देवसेन (आचार्य, दर्शनसार के कर्त्ता) १८४, १९०
देशिय (देशीय, देशी) गण ३५-३९
दोड्ड-कणगालु-अभिलेख ३८
दोस (द्वेष) ७७३
द्रविळगण-नन्दिसंघ-अरुङ्गल अन्वय ३५
द्रव्यमानुषी (द्रव्यस्त्री) ६५४, ६७८, ६८०
द्रव्यलिंग (द्रव्यवेद) ६०३, ६३२
द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र १९०
द्वैताद्वैत-अनेकान्त ३३८
द्वैताद्वैतवादरूप द्वैतवाद (कुन्दकुन्द) ३३३, ३३४, ३४०

ध

धनगिरि (श्वे० आचार्य) ४९१
धर (श्वे० आचार्य) ५४६, ५७१, ५७२
धरसेन (आचार्य) ३११, ३३२, ५४३-५४६, ५४८-५५१, ५६४, ५६८
धर्मपट्ट ७०
धर्ममंगल (मराठी मासिक पत्रिका) १४७, १४८

न

नग्न क्षपण (नग्गखवणो) ६०३
नट इलापुत्र ६१९
नन्दि आम्नाय, नन्दिसंघ १३, १४, ३४-३७
नन्दिगण (मूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय) ३५
नन्दिवृक्ष २७
नन्दिसंघ २७, ३४, ३६, ४१
नन्दिसंघ की गुर्वावली (प्रथम शुभचन्द्रकृत) ४९, १६८-१७४
नन्दिसंघ की पट्टावली (दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी Vol. XX के अनुसार हिन्दी में) ७, ८, ९, १०
नन्दिसंघ की पट्टावली (प्रो० हार्नले द्वारा सम्पादित एवं दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी Vol. XX में प्रकाशित, अँगरेजी में) १४-१७, १५७-१६७
नन्दिसंघ की पट्टावली (श्रवणबेलगोल स्तम्भ लेख) १७५-१७८
नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली (दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी Vol. XX में प्रकाशित, उसका हिन्दी रूपान्तर) २५, २६, १५२-१५६, ५४३, ५४६, ५६६, ५६७
नन्दिसंघ की विरुदावली (अज्ञातकर्तृक) ५०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

नन्दिसूत्र (नन्दीसूत्र) २४१, २७५, ४३५, ५५८, ५६९, ५७०, ५७२
नन्दिसूत्र की पट्टावली (स्थविरावलि) ५४८
नन्दीवृत्ति (आ० हरिभद्र) २४१
नपुंसकवेद ६३०
नपुंसकवेदनोकषायकर्म ५८३
नपुंसकांगोपांगनामकर्म ६३५, ६३६
नपुंसक (कृत्रिम) षड्विध (वर्द्धितक, चिप्पित, मन्त्रोपहत, औषधोपहत, ऋषिशप्त, देवशप्त) ६५४
नरवाहन (भूतबलि) ५७२
नवग्रहविधान १२५
नाइलकुल २०३
नागार्जुन (बौद्धतार्किक) ५३४
नागार्जुन ऋषि (श्वे० भूतदिन्न के गुरु) ५७२
नाथूराम प्रेमी, पं० १३४, १८६, २९०, ५५०
नित्तूर-अभिलेख १०६
निदिगि-अभिलेख ३८
निम्बदेव (महासामन्त) ९६, १००
नियमसार २०१, २११, २१९- २२४, २२८, २३८, २५१, २५९, २६५, २७४, २९९, ३३९, ३५५-३५९, ३६५, ४७५, ४७७, ४७८, ५२७, ५५३
निर्ग्रन्थ (नग्न) २९१
निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ २९१
निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) संघ, सम्प्रदाय, परम्परा ५६८
निर्युक्ति २००
निशीथचूर्णी ६५३
निशीथभाष्य (विसाहगणि-महत्तर) ६३८, ६५२-६५४
निशीथभाष्य-चूर्णि ६४०
निश्चयनय २०७, ४७०-४७२, ४७५
निह्नव ४१६
नीतिसार (इन्द्रनन्दी) ५३, ६०१
नेमिचन्द्र (सिद्धान्तचक्रवर्ती) ९३, १११, ११३, २४४, ६८७
नेमिचन्द्र (डॉ०, ज्योतिषाचार्य) १८-२२, २४२
नैश्चयिक-व्यावहारिकनय (व्याख्याप्रज्ञप्ति) ३६२
नोणमंगल-ताम्रपत्रलेख २८४, २८५
न्यायकुमुदचन्द्र-परिशीलन (प्रो० उदयचन्द्र जैन) ६६१
न्यायदीपिका ५४५
न्यायावतारवार्तिकवृत्ति-प्रस्तावना (पं० दलसुख मालवणिया) ३२९, ३३०, ३३४, ३४०, ३५१, ३५३, ३५५-३५८, ३६३

प

पउमचरिय (विमलसूरि) २०३, ४६६
पंचत्थिपाहुड ४५४, ४६३
पञ्चदशी (वेदान्तग्रन्थ) ३३७
पञ्चवर्षीय युगप्रतिक्रमण ७२६
पञ्चसंग्रह (चन्द्रर्षि महत्तर, श्वे०) ७५१, ७६५-७६९
— मलयगिरिटीका ७६७
पञ्चस्तूपनिवास ४१, ४२
पञ्चास्तिकाय १९०, २०२, २१४, २२०, २३०-२३२, २३६, २३७, २५९, २६५, २७८-२८२, २९०, २९१, २९३, ३३८, ३४१, ३४२, ३५४,

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३५५, ३५८, ३६५, ३६६, ४४२, ४५५, ४५७, ४७७
— समयव्याख्या (आचार्य अमृतचन्द्र) ३४२
— तात्पर्यवृत्ति (आचार्य जयसेन) २९६, २९७, ३४२, ४५८
— प्रस्तावना (अँग्रेजी—ए० चक्रवर्ती) १९५, २९४, २९५
पट्ट ३०
पट्टकाल ४६
पट्टधर ४६, ४७
पट्टाधीश ५
पट्टारोहणकाल ४६, ४७
पट्टावली समुच्चय (मुनि दर्शनविजय जी) ४९३, ४९९, ५००
पट्टावलीसारोद्धार : खण्ड २ > ५०१
पण्डितदेव (भट्टारक-उपाधि) १०५
पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दनग्रन्थ ६११, ६४८, ६७८, ६८९
पण्डिताचार्य (भट्टारक-उपाधि) १०५
पण्णवणासुत्त (देखिये, 'प्रज्ञापनासूत्र')
पण्णसवण, पण्णसमण (प्रज्ञाश्रमण) ऋषि ५४७, ५५०, ५६९, ५७०
पतञ्जलि महर्षि (व्याकरणमहाभाष्यकार) ४४७
पतञ्जलि महर्षि (योगदर्शनकार) १८१
पदेसग्ग (प्रदेशपुञ्ज) ७६५
पद्मनन्दी (बलात्कारगणाग्रणी भट्टारक) ३३
पद्मनन्दी भट्टारक (पदवी) ३२
पद्मनन्दी (कुन्दकुन्दाचार्य) ३५, ३६, १८६, ३११, ३१२
पद्मनन्दी (जंबुदीवपण्णत्तीकार) ३२७
पद्मनाभ एस० जैनी ६३१
पद्मप्रभमलधारिदेव २९९
पद्मावतीदेवी १२४
पन्नालाल सोनी (पं०, न्यायसिद्धान्तशास्त्री) ६४७, ६५०, ६७६, ६७७, ६९४
परतीर्थ ५९८
परतीर्थिक, अन्यतीर्थिक, परशासन, अन्य-लिंगी-मुक्तिनिषेध ५८९
परमभट्टारक ५२, ५३
परमात्मप्रकाश ६०, २६०-२६३, २६८-२७०, २७२, २७३, २९३, ४५७, ४७१, ४७४, ४७६, ४८१-४८४
— प्रस्तावना (डॉ० ए० एन० उपाध्ये) २६३
परमानन्द (पं०, शास्त्री) ४९०
परमार्थनय २०७, ४७०
परम्पराशिष्य १८३
परसमय ४७७, ४७८, ४७९
परस्परविरुद्ध धर्म ४४७
परिकर्म (षट्खण्डागम-टीका) १९०, ३११, ४६५, ५५१-५५४
परिहारसंयम, परिहारसंयत ९६७, ९६८
परीतसंसारी (भावश्रमण शिवकुमार) ५२०
पवाइज्जमाण (प्रवाह्यमान) ७३९, ७४०, ७७९, ७८०, ७८१
पसण्णमन (प्रसन्नमन) ५६९, ५७०
पाक्षिकसूत्र (श्वे० ग्रन्थ) ४३५
पाणिनि १८१
पाण्डवपुराण १७४
पातञ्जल महाभाष्य ६४८

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पातञ्जलयोगदर्शन-भाष्य (व्यास) ४४८
पात्रकेसरी स्वामी (पात्रस्वामी) ५२३
पारियत्त (पारियात्र देश) ३२७
पार्श्वनाथ ५३३, ५३४
पार्श्वनाथचरित (वादिराज सूरि) ५०२, ५२२
पार्श्वस्थ (पासत्थ) ५५, ३०५, ६०१
पार्श्वस्थपंचक ५५, ५६, ४६४, ६०१
पार्श्वस्थादिधृत जिनलिंग कुलिंग ६०१
पार्श्वाभ्युदय (जिनसेन) १८४
पाल्यकीर्ति शाकटायन ६३१, ६४५, ६६१, ६६५-६७०, ६८४, ७०९
पिण्डनिर्युक्ति ५२९, ५३०
— मलयगिरिवृत्ति ५०३
पी० बी० देसाई, डॉ० ९७, ९८
पीटर्सन (Peterson), प्रो० १८, १९, २०, ३२, १९६
Peterson's Fourth Report on Sanskrit Manuscripts. १९६
पुरातन-जैनवाक्य-सूची २१८, २४२
पुरुषनामगोत्रकर्म ६१३
पुरुषांगोपांगनामकर्म ६३५, ६३६
पुरुषवेद ६२९, ६३०
पुरुषवेद (पुंवेद)-नोकषायकर्म ५८३
पुष्पदन्त (षट्खण्डागमकार) १८१, १८२, ३११, ३३२, ५४४, ५४५, ५४७, ५४८, ५५१, ५७०, ५७१
पुसगिरि ५४७, ५४८, ५७०, ५७१
पुस्तकगच्छ ३५-३८
पूज्यपाद (देवनन्दी) ४४, १८१, १८८, १९१, २६१, २६३, ४७१ ४७४, ५२६, ६८७
पृथिवीकायिक नामकर्म ६३५
पेज्ज ७७३
पेज्जदोसपाहुड २४०, ७२७, ७३४
प्रकरणरत्नाकर (श्वे० ग्रन्थ) ६०७, ६५७, ६५८
प्रकीर्णक साहित्य (ग्रन्थ—श्वे०) ५७६, ५८५
प्रज्ञापनासूत्र, पण्णवणासुत्त, पन्नवणासुत्त (श्वे० ग्रन्थ) ३६१, ५२५, ५६२, ५७५, ५८५, ५८६, ६३९, ६५६, ६५९
— प्रस्तावना ३६०
प्रतिष्ठापाठ (महिपाल पण्डित-रचित) ३१७, ३२२-३२६
प्रवचनसार ५९, १८४, १८९, २०२-२०४, २१४, २२०, २२१, २२६, २३०, २४८-२५०, २५४-२५९, २६४, २७०, २७६, २७७, २८०-२८२, २८९, २९३, २९४, ३०५, ३४५, ३५३-३५८, ४५५, ४७७, ४७८, ५०६, ५५५
— तात्पर्यवृत्ति (आचार्य जयसेन) ७१, १८९, १९०, २९७, २९८
— प्रस्तावना (अँगरेजी—डॉ० ए० एन० उपाध्ये) १७४, ३०१, ४५६, ४८५, ५०७, ५३८, ५५२
प्रवचनसारोद्धार (श्वे० ग्रन्थ) ६०६, ६१०, ६१४, ६५१
— वृत्ति (सिद्धसेन सूरि शेखर) ६१२, ६३९, ६४१, ६५३-६५५
प्रवर्तक ११९, २१८
प्रशस्त उपशम ३७४

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य में गुणस्थान की अवधारणा (श्वे० साध्वी दर्शन-कलाश्री) ४२७, ४३५, ७०६-७०८
प्राकृतलक्षण (वैयाकरण चण्डकृत) २६२
पुण्ड्रवर्धनपुर ७२६

फ

फल्गुमित्र, फग्गुमित्त (श्वेताम्बराचार्य) ४९१
FIRE (दीपा मैहता द्वारा निर्मित फिल्म) ६३३
फीरोजशाह (बादशाह) ६९
फूलचन्द्र शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य (पं०) ३३, ३६, २४२, ६४८, ६८६, ७००, ७६१

ब

बदणेगुप्पे (ग्राम) २८३, २८४, २८५, २८८
बनारसीदास (पं०, कवि) १३३
बलगारगण (बलात्कारगण) ३३
बलाकपिच्छ ४४, १९७
बलात्कारगण १२, १३, १४, ३३, ३६
बहिरात्मादि भेद ४८३
बाणभट्ट ५२
बादरायण व्यास ४४६, ४५०
बारस-अणुवेक्खा २०१, २०२, २०८, २१८, २१९, २२२, २६४, २७७, २७८, ४२१
बालचन्द्र (पं०, शास्त्री) २०८, ५५२
बीजबुद्धि (तुषमाषघोषक शिवभूति) ५१९, ५२०
बुन्देलखण्ड १३६
बुहारी लगानेवाली वृद्धा ६१८
बूढी चँदेरी (गुना, म.प्र.) अभिलेख ३६
बृहट्टिप्पणिका (ग्रन्थसूची) ५५०
बृहत्कल्प-पीठिका-मलयगिरिवृत्ति ५१३
बृहत्कल्पसूत्र
— लघुभाष्य (संघदासगणी) ६४०
— लघुभाष्य-क्षेमकीर्तिवृत्ति ६३९, ६५५
बृहत्संग्रहणी (जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण) ५७५, ५७६, ५७७
बृहदारण्यकोपनिषद् ३३५
— शांकरभाष्य ३३५
बृहद्द्रव्यसंग्रह-ब्रह्मदेववृत्ति ५२९
बेचरदास (पं०) ५५०, ५६८
बेड़िया (गुजरात) अतिशय क्षेत्र ११५
बोटिक, बोडिय (संघ, संम्प्रदाय) ३३०, ३३१, ४९०
बोटिकनिह्नव ४१६
बोधपाहुड (बोधप्राभृत) २२०, ३०४, ३०५, ५०२, ५०६, ५३८, ५४०
बौद्धमत ३४२, ३४३, ३४४
ब्रह्मदेवसूरि ६०
ब्रह्मवाद ३३४
ब्रह्मसूत्र (बादरायण व्यास) ४४६
— शांकर भाष्य ३३६, ३३७, ४४७
ब्रह्माद्वैत ३३३, ३३४

भ

भक्तपरिज्ञा (भत्तपरिण्णा) २०३, २१७, २७५, ५७६
भगवती-आराधना (जैन सं० सं० सं० सोलापुर) ५५, १९१, १९७-२०७, २०९-२११, २१४, २७४, ४८०, ४९२-४९६, ५१९, ५२७, ५७७
— विजयोदयाटीका (अपराजितसूरि) ५६-५९, २७५-२७७, ४९३

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भगवती सूत्र (देखिये, 'व्याख्याप्रज्ञाप्ति')
भगवतीसूत्र : एक परिशीलन (देवेन्द्र मुनि शास्त्री) ४४४, ५८५
भगवान् महावीर का अचेलकधर्म (पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री) ५९७
भट्ट प्रभाकर २९३
भट्ट, भटार, भट्टार, भट्टारक, (पूज्यता, विद्वत्ता एवं सम्मान-सूचक उपाधि) ५२-५४, ३०६
भट्टारक (अजिनोक्त-सवस्त्रसाधुलिंगी धर्म-गुरु, सम्प्रदाय, परम्परा) ३९-४३, ५४, ५५, ६०, ६३, ६४, ६५
— उपाधियाँ : स्वामी, जगद्गुरु, कर्म-योगी, पण्डिताचार्य, धर्मगुरु, राजगुरु, स्वस्ति ६२, ६३, ७०, ७२, ७६, १०१, १०४, १०६, १०७
भट्टारकचर्चा (पुस्तक) ७६, ८०, १४७
भट्टारकपदस्थापनाविधि ११५, ११६, १२०
भट्टारकप्रथा ४५, ४६
भट्टारकमीमांसा (पं० दीपचन्द्र वर्णी) ७४
भट्टारकशासन १३६
भट्टारकपरम्परा (आ० हस्तीमल-कल्पित) ४-१२, ४५, ४६, ५०, १०२-१०४, १०७-१०९
भट्टारकसम्प्रदाय (ग्रन्थ—प्रो० जोहरापुरकर) ११, ३३, ३९, ४८, ४९, ५०, ७२, १०१, १८५
भट्टारकोत्पत्तिकथा ८२
भट्टिलपुर १९
भद्दलपुर १४, १७, १९, १५७
भद्दलपुरी १९
भद्दिलपुर ७, १९
भद्रबाहु द्वितीय (दिगम्बर) २६-२९, ४७, ३११, ४८९, ५११, ५४०
भद्रबाहु द्वितीय (श्वे०, निर्युक्तिकार) ४१४, ४१५, ४८९, ५२८, ५३५
भद्रबाहु श्रुतकेवली ४२, ४४, १८२, १८७, १९१, ४३७, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०
भद्रबाहुसंहिता (भट्टारकीय ग्रन्थ) १३७
भद्रसंघ ४२
भव्य-अभव्य (वस्तुधर्म) ३४१, ३४२
भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पूना ५५०, ५६८
भारती (सरस्वती) ३३
भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ-परिचय मध्यप्रदेश : १३ वीं शती तक (डॉ० कस्तुरचन्द्र 'सुमन') ६३, ६४
भावनपुंसक ६५५, ६८१
भावनपुंसकत्व ६८१
भावनिक्षेप ३३४
भावनिर्ग्रन्थ ९७
भावनैर्ग्रन्थ्य (भावनिर्ग्रन्थधर्म) ८८, ८९, ९७, १०१
भावपरिग्रह ८३०
भावपाहुड (भावप्राभृत) ५५, ५९, २१९, २२२, २३५-२३७, २६६, २८२, ३०१, ३०४, ३४५, ३५६, ४२१, ४७४, ४९४, ४९५, ६०३
— श्रुतसागरटीका ६०३
भावमानुषी (भावस्त्री) ५७९, ६६८, ६७८
भावलिंग (श्वे०) ५९७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भावलिंग (दिगम्बर) ६०३, ६२९, ६३२
भाववेद ६२९
भावसंग्रह (वामदेव) ९६९
भावस्त्रीवेद ६६८
भावेन्द्रिय-द्रव्येन्द्रिय ६९९, ७००
भूतदिन्न ५४७, ५४८, ५७०, ५७१
भूतबलि १८१, १८२, ५४३, ५४४, ५४७, ५४८, ५५१, ५७०, ५७१
भूतार्थनय २०७, ४७०
भूरामल ब्रह्मचारी (आचार्य ज्ञानसागर जी) ५३७
भेलसा (भूपाल=भोपाल) ८

म

एम० ए० ढाकी (प्रोफेसर) १८६, १८७, २८६, ४५२-४६४, ४६७, ४७२, ४७७, ४७९, ४८२
मज्झिमनिकायपाळि ४४४, ४५१
मणुसिणी (देखिये 'मनुष्यिनी')
मण्णे अभिलेख (क्र. १२२) ३७, २८७, २९५
— (क्र. १२३) ३७
मथुरागम ६६१, ६६५
मथुरा-शिलालेख ३०८, ५४८, ५५०
मदने-अभिलेख १०७
मध्यदीपक न्याय ४०४
मनुष्य (१. भावपुरुषवेदी द्रव्यपुरुष, २. भावनपुंसकवेदी द्रव्यपुरुष, ३. द्रव्यनपुंसक मनुष्य) ६५१, ६८०, ६८१, ६८२
मनुष्य पर्याप्त (भावपुरुषवेदी एवं भाव-नपुंसकवेदी द्रव्यपुरुष) ६८१
मनुष्यिनी, मणुसिणी, मानुषी (मनुष्यजातीय द्रव्यस्त्री) ५७९, ६४१, ६४२, ६४४-६४७, ६६८, ६६९, ६७२-६७७, ६८७, ६८८, ७०५
मनुष्यिनी, मणुसिणी, मणुस्सी, मानुषी (मनुष्यजातीय भावस्त्री अर्थात् शरीर से पुरुष किन्तु भाव से स्त्री) ५४४, ५७९, ५८०, ५८२ (मनुष्यिनीसंज्ञा विग्रहगति में), ६४१, ६४२, ६४४-६४८, ६५०, ६५१, ६५८, ६५९, ६६७, ६६८, ६७१, ६७२-६७७, ६८१, ६८४, ६८८, ६९६, ७०५
मन्त्रतन्त्रशक्ति ५५०
मन्दिरमठवासी मुनिपरम्परा १०१
मयीडवोलु-दानपत्र २९६
मरुदेवी ६१४, ६१५, ६१६, ६२२
मर्कराताम्रपत्रलेख ३७, २८३, २८५-२८७, २८९, ३०६, ३०७, ४५५
मलयगिरि (श्वे. मुनि) ७५२
मल्लवादी (सन्मतितर्क के टीकाकार, श्वे०) ४६८, ४६९, ४७२
मल्लितीर्थंकर ५८३
महाकर्मप्रकृतिप्राभृत २४७, ५४४, ५४५, ५७३
महाप्रत्याख्यान २१७, ४६६
महाबल (राजकुमार) ५८३, ६०५, ६०६
महाभारत ३०४
महावाचक ७५८
महावीरभट्टारक ५३
महिपाल पण्डित ३१६
महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' डॉ० > ११५
माइल्ल धवल १९०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

माउयाणुयोग (मातृकानुयोग) २३४
मांसाशन (आपवादिक—श्वे०) ३३०, ४६५
माघनन्दी (आचार्य, एकांगधारी) २७, ३११
माघनन्दी प्रथम (इण्डि. ऐण्टि. पट्टावली) ७, १४, ४६, ४७, ४८
माघनन्दी (कोल्हापुर के महाराजा गण्डादित्य के गुरु) ८२-८४, ८७-९०, ९६, ९९, १००
माध्यमिककारिका (नागार्जुन) ३५८
मान्यनगर-अर्हदायतन २८६, २८७
मारसिंह द्वितीय (गंगवशी राजा) २८६
मालियक्के (एक भट्टारक की गृहस्थशिष्या) १०६
मित्रनन्दिगणी ४९२
मिलापचन्द्र कटारिया (पं०) ७२
मीडिएवल जैनिज्म (सालेतोरे) २८८
मीमांसाश्लोकवार्तिक (कुमारिल भट्ट) ४४८, ४४९
मुकुटसप्तमीव्रत (भट्टारकप्रचलित) १२५, १३२
मुण्डकोपनिषत् ३३५
मुनिचक्रवर्ती १०९
मुनिलिंगाभास ६०२
मूडबिद्री ६८६, ६८७, ६८९, ७६४
मूर्च्छा, राग, इच्छा, ममत्व—एकार्थक ७५८, ७५९
मूलसंघ १३, १४, ३३, ३५, ३६, ३८, ३९, २८५
मूलसंघीय-नन्दिसंघ ५६५
मूलाचार ५५, ११९, २०७-२२९, २३७, २७४, २८९, ४२३, ४६६, ४७३, ४८१, ५७६, ६५६, ६५७
— आचारवृत्ति (आ० वसुनन्दी) २२३, ४७०
मृगचरित्र (यथाछन्द=भ्रष्ट दि० जैन मुनि) ५९
मेषपाषाणगच्छ (कुन्दकुन्दान्वय) ३९
मैक्समूलर ४४६
मोक्खपाहुड २०६, २२२, २६६, २६७, २७१, ३५५, ५०७
— श्रुतसागरटीका ६२, ४६०
मोटी साधु वन्दना : (श्वे० ग्रन्थ) ६१९
मोनियर मोनियर विलिअम्स संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी १२०
मोहनीय के ५२ नाम ७५८, ७५९

य

यति ७१४, ७१८, ७४५
यतिग्रामाग्रणी (भदन्त शाकटायन) ७१८, ७४२, ७४३
यतिवृषभ (आचार्य) २१५, २४०, २४३, २४७, ७१३, ७१४, ७१५, ७१८, ७१९, ७२५, ७३०, ७३४, ७४१, ७४२, ७४८
यतिसम्मेलन ७२६
यथाछन्द (जहाछंद = भ्रष्ट दि० जैन मुनि) ६०१
यशस्तिलकचम्पू (सोमदेवसूरि) ५९८
— श्रुतसागरटीका ५०
यापनीय (मत, मुनि, आचार्य, संघ, सम्प्रदाय, परम्परा) १११, ११३, २९१
यापनीयग्रन्थ ५४३
यापनीय-नन्दिसंघ ३५, ५६५
यापनीय-नन्दिसंघ-पुन्नागवृक्षमूलगण ५४६, ५६४, ५६५

'Yāpanīya Saṅgha, a Jain Sect' (Bombay University Journal, May 1933)—Dr. A.N. Upādhye ५०६
यापनीयसंघ-पुन्नागवृक्षमूलगण ५६५
युगपद्वाद, यौगपद्यवाद, युगपत्पक्ष (देखिये, केवलि-उपयोगद्वय)
युक्तिप्रबोध (श्वे० आ० मेघविजय जी) १३३
युक्त्यनुशासन (समन्तभद्र) ३४०
योगदर्शन (पतञ्जलि) १८१
योगसार (जोइन्दुदेव) २६१, २६८, २७१, २७२, ४८३
योनिमती ७०१

र

रणावलोक कम्भराज (राष्ट्रकूट शासक) ४५८
रतनचन्द्र जैन मुख्तार (पण्डित) : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, भाग १ : ३७४, ३७५, ७०२
रत्नकरण्डश्रावकाचार ५०८, ६७७, ६९१, ७०२
— भूमिका (पं० जुगलकिशोर मुख्तार) ५०८
रथवीरपुर (रहवीरपुर) ४९६
रन्न (महाकवि) १११
रयणसार ३०४, ३०५
राचमल्ल, राजमल्ल (गंगवंशी नरेश, इनके महामंत्री चामुण्डराय थे) ९२
राजवार्तिक भाष्य (तत्त्वार्थराजवार्तिक) १८६
राजाराम जैन (प्रो०, डॉ०) ४८५, ४८६
रामप्रसाद शास्त्री (पं०) ६१०, ६८८
रामायण (वाल्मीकि) १८१
रिचार्ड पिशल (डॉ०) ४८७
रूपनारायण वसदि (कोल्हापुर) ९६

ल

लब्धिसार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) ११३, २४४, ३७५, ३७६, ३८२
ललितविस्तरा (हरिभद्रसूरि) ३९०, ४१९, ६०५, ६१६
लिंगपाहुड (कुन्दकुन्द) ६०, २२०, २२७, ३०४, ३०५, ४६४
लिङ्गप्राभृतोक्त शिथिलाचार ४६४
लीलावती जैन, सौ० (सम्पा.—धर्ममंगल) १४७
लोकविनिश्चय (ग्रन्थ) २४२, २४३
लोकविभाग २४२, २४३, २९९, ३००
लोकसेन (आचार्य) १८३
लोकानुगामिनी दृष्टि ६७१
लोकानुयोग-विषयक-प्रकरणसमूह २९९
लोकानुसारिणी चक्षु ६७१
लोयपाहुड २९९
लोहाचार्य द्वितीय ७, १५, ४७
लोहार्य (लोहाचार्य) ३१०, ३११, ३३२
लौकिक मुनि ५९, १८२
लौकिक व्रत (भट्टारकसम्प्रदाय-प्रवर्तित)—रविव्रत, रोहिणीव्रत, मुकुटसप्तमीव्रत, आकाशपंचमीव्रत, सुगन्धदशमीव्रत, कोकिलापंचमीव्रत, चन्दनषष्ठीव्रत, नवग्रहविधान आदि १२५

व

वक्रगच्छ (कुन्दकुन्दान्वय) ३९
वक्रग्रीव (कुन्दकुन्द) ३६

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वज्रनन्दी (पूज्यपाद का शिष्य, द्राविड़संघ-संस्थापक) १९६, २६१
वट्टकेर (आचार्य) २१५, ४७५
वदनोगुप्पे-ताम्रपट्ट-दानपत्र ४५९, ४६०
वरांगचरित (जटासिंहनन्दी) २७३-२७५, ४७१, ६२८
वराहमिहिर (ज्योतिर्विद) ४१४, ५३५
वरिसवर (श्वेताम्बर-कर्मग्रन्थों का विशिष्ट शब्द) ७६५
वर्धमानगुरु २८८, ४५९, ४६३
वल्लाल (महाराज) ९५
वंशीधर व्याकरणाचार्य, पं० ६४८, ६७८, ६८७
वसन्तकीर्ति, दि० जैनाचार्य (आगमविरुद्ध अपवादवेष-प्रवर्तक) २०, ४८, ६००
वसुनन्दी आचार्य (सैद्धान्तिक) १९६
वसुनन्दी-श्रावकाचार ३९
वाक्पदीय (भर्तृहरि) ६४५
वागेश्वरी (सरस्वती) ३३
वाचक (पद) ७५७, ७५८ (पूर्वविद्), ७७८ (वाचना देनेवाला)
वाटग्राम १८३
वाणारसीमत १३३
वात्सल्यरत्नाकर (द्वि.खं.) ६८६
वारानगर, वारा, वारां ९, १६०, ३१८, ३२७
वाल्मीकि (रामायणकार) १८१
विक्रमादित्य राजा (ईसापूर्व ५७) २७
विक्रमोर्वशीयम् (नाटक—कालिदास) ४८७
विक्रान्तकौरवीय नाटक ४९८
विग्रहगति ५८१, ५८२
विजयनगर-दीपस्तम्भलेख ३६, ४६१
विजहना २०१
विज्ञान-अविज्ञान (वस्तुधर्म) ३४१, ३४२
विज्ञानाद्वैत ३३३, ३३४
विद्याधर जोहरापुरकर (देखिये 'जोहरापुरकर')
विनयन्धर ३१०, ३११
विबुधश्रीधर (श्रुतावतार के कर्त्ता) ५५२, ५६६, ५६७, ५७२
विरहदिन २४, २५
विविधदीक्षा-संस्कारविधि (भट्टारक-सम्प्रदाय द्वारा रचित) ११५, १२२
विशेषणवती (जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण) ५२५, ५२६
विशेषावश्यकभाष्य २४४, ५१०, ५११, ५७५, ५८९, ५९७, ६३७
— हेमचन्द्रवृत्ति ५८९, ५९७, ६०३, ६३८, ६४१
विष्णु (वैदिक देवता) ३०२, ३०३
विष्णुकर्तृत्ववाद ३०१, ३०२
विसंयोजना ३७३, ३७४, ३७७, ३७८
विसंयोजना और अप्रशस्त उपशम में कथंचित् साम्य (संक्रमण की अपेक्षा) ३७६
विसंयोजना और उपशम में भेद ३७४
विसंयोजना और क्षपणा में भेद ३७३
विसंयोजना द्वितीयोपशम एवं क्षायिक सम्यग्दर्शनों में ३७६, ३७७
वीरनिर्वाण संवत् ४१६
वीरवर्धमानचरित (भट्टारक सकलकीर्ति) ७३, १८५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वीरसङ्घ ४१
वीरसेन स्वामी (धवलाकार) १८२-१८८, २४०, ४७५, ६८६, ६९०
वृषभसंघ २७
वेद (लिङ्ग) ६२९, ६३०
वेदत्रय ६२९, ७२२
वेदपुरुष (वेदवैषम्ययुक्त पुरुष) ६३७
वेदवैषम्य (श्वेताम्बरग्रंथों में) ६३७-६४१, ७२२
वेदवैषम्य ६३२-६५०, ६६०, ६६१, ६६७, ३६९, ६९६, ६९८, ६९९, ७०२
वेदान्त ४७३
वेदान्तसार (सदानन्द) ३३५
वेदान्तिक दृष्टि ४७३, ४७५
वैशेषिकसूत्र ४४८
वैशेषिकसूत्रोपस्कार (शंकरमिश्र) ४४८
व्यवहारनय २०७, ४७०, ४७१, ४७५
व्याकरण महाभाष्य (पस्पशाह्निक) ४४७
व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) २०८, २१०, २३७, ३६२, ३९९, ४४२, ७५९

श

शङ्कराचार्य ४७२
शतपदी (कर्त्ता—श्वे. मुनि श्री महेन्द्र सूरि) ६५, ६८, ६९
शब्दावतार (पूज्यपाद स्वामी) २६१
शाकटायन (पाल्यकीर्ति) (देखिये, 'पाल्य-कीर्ति')
शाक्ति (शाक्तिकुमार, वारानगर का राजा) ३२७
शान्तिसागर जी (आचार्य) ६८६
शारदा (सरस्वती) ३३
शाश्वत-उच्छेद (वस्तुधर्म) ३४१, ३४२
शाश्वतवाद ३४२
शिथिलाचार ३०४, ३०५
शिवकुमार (भावश्रमण) ४९५, ५२०
शिवकुमारमहाराज (मुनि) १८९, २९१-२९३, २९६-२९८, ४५६
शिवगुप्तगणी ४९२
शिवभूति (बोटिक) ४८९, ५१०
शिवभूति (श्वे० कल्पसूत्र-स्थविरावली) ४८९, ४९१, ५१०
शिवभूति (तुषमाष-घोषक दिगम्बर मुनि) ४८९, ४९३
शिवभूति और शिवार्य (लेख—प्रो० हीरालाल जैन) ४९०
शिवभूति, शिवार्य और शिवकुमार (लेख—पं० परमानन्द जैन शास्त्री) ५१७
शिवमृगेश वर्मा (कदम्बवंशीय राजा) २९१
शिवस्कन्द वर्मा (पल्लवराज) २९४, २९६
शिवार्य (भगवती-आराधनाकार) १८७, ४८९, ५११
शीतलमति आर्यिका ११५, ११६
शुद्धनय २०७, ४६९
शुद्धोपयोग ४७९, ४८०
शुद्धोपयोग के नामान्तर ४८० (शुद्धमनोयोग, मनोगप्ति, विशुद्धात्मा, भावशुद्धि), ४८१ (शुद्धभाव, पारमार्थिक विशुद्धि, आत्मविशुद्धि), ४८२ (शुद्धपरिणाम, परमसमाधि, शुद्धप्रयोग)
शुभ, अशुभ, शुद्ध उपयोग ३४८, ४८०
शुभचन्द्र (प्रथम) कृत गुर्वावली ३३, ४२, २३९, ३२६
शून्य-अशून्य (वस्तुधर्म) ३४१, ३४२

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शून्यवाद ३४२
शून्याद्वैत ३३४
शोधादर्श (पत्रिका)—(अंक ३४, मार्च १९९८) १४८, १४९
शौरसेनी प्राकृत ७२५
शौरसेनीकरण ७१४, ७४३
श्यामाचार्य (पण्णवणासुत्त = प्रज्ञापनासूत्र के कर्त्ता) ६३९
श्रमण (मासिक पत्र) ४८५
श्रमण भगवान् महावीर (मुनि कल्याण-विजय) ३, २९०, २९१, २९९, ३०४, ३०६, ३०८, ४९०
श्रवणबेल्गोल ९३
श्रवणबेलगोल-सिद्धरबस्ती-स्तम्भलेख (क्र. १०५/२५४) ३६
श्रवणबेलगोल-सिद्धरबस्ती-स्तम्भ-लेख (क्र. १०८/२५८) ३५, ३७
श्रीकित्याचार्य (यापनीय) ५६६
श्रीविजयजिनालय २८३-२९०
श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा (कदम्बवंश) २९१-२९३
श्रीविजय (सेनापति) २८६
श्रुतकेवली ४७३
श्रुतसागर सूरि (भट्टारक, १५वीं शती ई०) ५०, १९१, ६०१
श्रुतावतार (इन्द्रनन्दी) ४१, १८३, १८६, १९०, ५५१, ७३२, ७७९, ७८५
श्रुतावतार (विबुधश्रीधर) ५५२, ७३२
शृंगारशतक (भर्तृहरि) २७५
श्लोकवार्तिक (आ० विद्यानन्द) १८६
श्वेतपट (सेयवडो) ६०३
श्वेतपटमहाश्रमणसंघ २९१
श्वेतपटसंघ (सर्वथा सचेलमुक्तिवादी) ५६८
श्वेताम्बर आगम साहित्य ४६९
श्वेताम्बरमत में दीक्षा के अयोग्य पुरुषों, स्त्रियों, नपुंसकों की संख्या एवं प्रकार ६५२-६५५
श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा (उत्तर-भारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा) ५४३, ७१४, ७२०
श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४९

ष

षट्खण्डागम (छक्खंडागम) १८१, १८३, २३६, २८९, ५४३, ५४४, ५४८-५६२, ६६१, ६६२, ६६४, ६६५, ६८५ (तीन कन्नड़ प्रतियाँ), ६८६, ६९३ (ताम्रपत्रोत्कीर्ण), ७०६, ७२७
— पुस्तक १ : ३६५, ३७७, ३९३, ४१३, ५५४, ५८१, ५९१, ५९२, ६०४, ६१३, ६३२, ६४४, ६५२, ६७४, ६८१, ६८३, ६९१, ७००
— पुस्तक ४ : ६२२, ६४३
— पुस्तक ५ : ३७४, ५६०, ६२८
— पुस्तक ६ : ५९२, ५९४, ६११, ६१२, ६१३, ६२१, ६२९
— पुस्तक ७ : ४१३, ५६०, ५८२, ६०४, ६२७, ७७२
— पुस्तक ८ : ५९४, ५९५, ६२२, ६२५, ६४९, ६५०
— पुस्तक ९ : ५५०, ५९५
— पुस्तक ११ : ६५६, ६५७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

— पुस्तक १२ : ४१३, ५९२, ६०५, ६२२, ६२३
— पुस्तक १३ : ५२६, ५५३, ५९३, ६२२
— पुस्तक १४ : ५९३
— धवलाटीका (आचार्य वीरसेन)
— पुस्तक १ : १८२, २७९, २८०, ३३२, ३७४, ३७६, ३९०, ४०३, ४१८, ४१९, ४४९, ५५०, ५८२, ६३३, ६७४
— पुस्तक २ : ५८३, ६४४, ६७५, ६८०, ६८२
— पुस्तक ३ : २४०, २८१, ४७५, ६३५, ६३६
— पुस्तक ४ : १८८, २७९, ६३२
— पुस्तक ५ : ३७४, ३८१
— पुस्तक ६ : २८२, ७६५
— पुस्तक ७ : ५८२, ६०४
— पुस्तक ८ : २८१, ६४६, ६४९, ६५०, ६५२, ७०३
— पुस्तक ९ : १८८, २८०, ३४१
— पुस्तक ११ : २७९, ६५९
— पुस्तक १२ : ३७१, ३७८, ३८०
— पुस्तक १३ : २८०, २८१, ५१९
— पुस्तक १५ : ३७४
— पुस्तक १६ : २७८
षटखण्डागम-परिशीलन (पं० बालचन्द्र शास्त्री) : २०८, २१०, २७९-२८२, ५६०, ५८५
षट्खण्डागम-प्रस्तावना, (प्रो०, डॉ० हीरालाल जैन) ५५० (पु.१)
षटखण्डागम-प्रस्तावना (पं० हीरालाल शास्त्री) ४३७
षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन (पं० पन्नालाल सोनी) ६७६, ६७७, ६९४, ६९५
षट्खण्डागम-सम्पादकीय (प्रो० डॉ० हीरा लाल जैन एवं डॉ० ए० एन० उपाध्ये) ५५४ (पु.१)
षट्प्राभृत ३०४, ४८७
षड्दर्शनसमुच्चय (हरिभद्रसूरि) ३४४

स

संयत (पद) ६८५
संशय ५४५
संसक्त (संसत्त=भ्रष्ट दि० जैन मुनियों का एक भेद) ५८, ६०१
संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी (सर एम० मोनियर विलिअम्स) १२०
संहिताशास्त्र (भट्टारकीय ग्रन्थ) १३२
सकर्मक (कर्मबद्ध) ३६३
सकलकीर्ति (भट्टारक) ७२, १८५
संकम ७७३
संगाइणी २४२, २४३
संग्रहणीसूत्र ५८५
संठाणपाहुड २९९
सच्चक (देखिये 'निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक')
संजद (पद) ६७१, ६७२, ६८४-६९५
सञ्जय बेलट्ठपुत्त (अनिश्चयवादी) ४४३, ४४४
सतकचूर्णि ७१९, ७७५
सतीशचन्द्र (डॉ०) १९६
सन्मतिसागर आचार्य (आ० आदिसागर अंकलीकर के शिष्य) ११५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सन्मतिसूत्र, सन्मतितर्क, सन्मति ५२५
सप्ततिकाचूर्णि ७६५, ७७६, ७७७
सप्तभंगी-विकासवाद ३६९, ४४२
सप्तविध जिज्ञासाएँ ४४५, ४४६
समन्तभद्र स्वामी ४४, १८१, ४८९, ५२८, ५२९
समन्तभद्रस्वामी-कथा ४९८, ६९१
समय (छह अर्थ) ४७७
समयसार २०७, २२०-२२६, २३०, २३१, २३५, २३६, २५१-२५५, २५७, २५९, २६८-२७०, २७२-२७५, २७७, २८१, २८२, ३०१, ३४६, ३४८, ३५१, ४२१, ४७०, ४७४, ४७५, ४७८
— आत्मख्यातिटीका (आ० अमृतचन्द्र) ३३८, ३३९, ३४७, ३५२, ३७२, ३९३, ४७७
— तात्पर्यवृत्ति (आ० जयसेन) ६०
समयसुन्दर गणी ४९२
समलैंगिक विवाह ६३३
समवायांगसूत्र ३६९, ३९४, ५८४, ७१४, ७५९
समाधितन्त्र (समाधिशतक) २६२, २६३, २६६, २६७, ४७१
सम्बोधसत्तरी (रत्नशेखर सूरि, श्वे०) ५९०
सम्मेदशिखर १२८, १२९, १३०
सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य हेतु ५९२
सम्यग्दर्शन का विचित्र लक्षण १३०, १३१
सरजस्क (कापालिक) ५९७
सरस्वती (सारस्वत) गच्छ १२, १४, २३, २६, २७, ३२ (सरस्वतीगच्छ नाम का प्रचलन), ३३ (पाषाणघटिता सरस्वती), ३६
सर्वथा सचेलमुक्तिवादी (श्वेताम्बर और अर्धफालक) ५६८
सर्वनन्दी आचार्य २४२, २९९, ३००
सर्वार्थसिद्धि टीका २०९, २२९, २३७, २४४, २६१, २६३-२६६, ३७१, ३७७, ३८०, ३९२, ३९५, ३९६, ४०४, ४७३, ४८१, ४९३, ५२७, ५३५, ५७७, ६२९, ६३४, ६४५, ६७८, ६८७, ६९९, ७०३
— दो शब्द (सिद्धा० पं० फूलचन्द्र शास्त्री) ६४८
— प्रस्तावना (सिद्धा० पं० फूलचन्द्र शास्त्री) १८९
सागरमल (डॉ०) ५४३, ५४४, ६७१, ६७२, ७०६
— अभिनन्दन ग्रन्थ (देखिये, डॉ०....)
सागारधर्मामृत ७१
साङ्ख्यकारिका ३४८
साङ्ख्यमत ३४३, ४७२
सान्निपातिकभाव (मिश्रभाव) ४३६
सामन्तभद्र (श्वेताम्बर) ४८९
सिंहनन्दी मुनि (भट्टारकपरम्परा के प्रथम आचार्य) ९१, ९२
सिंहवर्मा (काँची का राजा) २४२
सिंहसंघ २७, ३४
सित्तरीचूर्णि ७१९, ७४७
सिद्धभक्ति (पूज्यपाद) ५२७, ६३३
सिद्धसेन-द्वितीय (सन्मतिसूत्रकार, दिगम्बर) ४६८, ४६९, ५२५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सिद्धहेमशब्दानुशासन २३८
सिद्धान्तसमीक्षा भाग ३ : ६९६-६९७, ७००
सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ ६८६
सिद्धिविनिश्चय (अकलंकदेव) ५२३
सिन्धुघाटीय (सिन्धु) सभ्यता ३६८
सुखलाल संघवी (पं०) १८६
सुत्तपाहुड २२१, २९०, ५०५, ६००
सुबुद्धि (पुष्पदन्त, षट्खण्डागमकार) ५७२
सुभद्र आचार्य (दशांगधारी) २७
सूत्रकृतांग (सूत्र) निर्युक्ति ५३१, ५८५
सूत्रकृतांगसूत्र ५९०
सूरिमन्त्र ३१, ३२
सूर्यप्रकाश (पं० नेमिचन्द्रकृत भट्टारकीय ग्रन्थ) १२५, १३७, १४५, १४७
सूर्यप्रकाशपरीक्षा (पं० जुगलकिशोर मुख्तार) १२५, १२७, १३२, १३७
सेक्स एण्ड जेण्डर (डॉ० राबर्ट जे० स्टॉलर, एम० डी०) ६३३
सेनसंघ (सेनगण) ३४, ४२, १८३-१८५
सेसिल बेण्डल (Mr. Cecil Bendall, a scholar from England) १२
सोमदेव सूरि (यशस्तिलकचम्पूकार) ५९८
सोमवार-अभिलेख ३५
सोलहकल्प ६२६
सौन्दरनन्द (अश्वघोष) ५९०
स्त्रीतीर्थंकर ६०५
स्त्रीनामगोत्रकर्म, स्त्रीगोत्रकर्म, स्त्रीवेदनाम-कर्म, स्त्र्यंगोपांगनामकर्म, स्त्रीशरीरां-गोपांगनामकर्म ५८२, ६०६, ६३५, ६३६, ६६९
स्त्रीनिर्वाणप्रकरण (पाल्यकीर्ति शाकटायन) ६३१, ६६१-६६६, ७०९, ७२५
स्त्रीमुक्तिनिषेध ५८१, ७५३-७५५
स्त्रीवेद ६२९, ६३०
स्त्रीवेदनोकषायकर्म ५८२, ५८३
स्त्रीवेदी मनुष्य ६५५
स्त्रैणभाव ६६७, ६६८
स्थविर (संघव्यवस्थापक दिगम्बर साधु) ११९, ६२५, ६२६
स्थविरकल्पिक (कल्पी) साधु (श्वे०) ६२५, ६२६
स्थानांगसूत्र २३५, २७९, ६१०
स्यात् (निपात) ४५१
स्याद्वाद ४४४
स्याद्वाद-सप्तभंगी ४८२
स्वयम्भूस्तोत्र (समन्तभद्र) ३४०, ५२८, ५२९, ५३१-५३३
स्वसमय ४७७, ४७८, ४७९
स्वस्ति (भट्टारकोपाधि) १०६
स्वाति : (श्वे० आचार्य) ७२०
स्वामी (समन्तभद्र की उपाधि) ५२२, ५२३
स्वामी समन्तभद्र (ले०—जुगलकिशोर मुख्तार) ३५, १९६, १९७, २६१, २९५, ४५७, ५४०

ह

हट्टण-अभिलेख ३८
हरिदास शास्त्री, जयपुर २८
हरिवंशपुराण १८६, ३१३, ३१५, ३३२, ५४९
हर्षचरित (बाणभट्ट) ५२

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हलेबीड-अभिलेख १०६
हल्सी-ताम्रपत्रलेख (मृगेशवर्मा) २९१
हस्तीमल (श्वे० आचार्य) ४, ५, १८३, १८५, २९०, ३१०, ३१४, ३१६
हार्नले, ए० एफ० रूडाल्फ, प्रो० डॉ० (अँगरेज विद्वान्) १२, १४, १८, २२, २४, २८, ३०, ३१, १९५
हिन्दतत्त्वज्ञान नो इतिहास (गुजराती ग्रन्थ) ३०३
हिन्दी का उद्विकास और भोजपुर की साहित्यिक प्रगति (लेख—प्रो०, डॉ० राजाराम जैन) ४८५
History of The Mediavel School of Indian Logic १९६
हीरालाल जैन, पं० सिद्धान्तशास्त्री (साढूमल) ७२, ४३६, ७४८
हीरालाल जैन, प्रो०, डॉ० ४८९, ४९०, ४९७, ५१४-५१८, ५३५, ५५२, ६७०, ६७१, ६९६-६९७
हुण्डावसर्पिणीकाल ६०९-६११, ६१४
हुण्डावसर्पिणीकाल की दस आश्चर्यजनक घटनाएँ (श्वे०) ६१०
हूमड़ इतिहास (भाग २) ७६
हूलि-अभिलेख ५६५
हेत्वाभास, हेत्वाभासता ५६३, ७३०
हेमचन्द्र, कलिकालसर्वज्ञ, आचार्य (वैयाकरण) २३८
हेमचन्द्र विजय (श्वे० मुनि) ७६१, ७६२
हेरेकेरी-अभिलेख (क्र० ४८९) १०६
हैम प्राकृत-शब्दानुशासन (कलिकालसर्वज्ञ, आ० हेमचन्द्र) ४८७
Homosexuality (समलैंगिक मैथुन) ६३३

प्रयुक्त ग्रन्थों एवं शोधपत्रिकाओं की सूची

१. **अंगुत्तरनिकायपालि** (भाग ३,४) : विहार राजकीय पालि-प्रकाशन मण्डल। ई० सन् १९६०।
— भाग ३ > निपात ६, ७, ८।
— भाग ४ > निपात ९, १०, ११।

२. **अनगारधर्मामृत** : पं० आशाधर जी। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९७७।
— ज्ञानदीपिका संस्कृतपञ्जिका (स्वोपज्ञ)।
— सम्पादन-अनुवाद : सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।

३. **अनुयोगद्वारसूत्र** : श्री आर्यरक्षित स्थविर। श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)।
— अनुवादक-विवेचक : उपाध्याय श्री केवलमुनि जी।

४. **अभिधानचिन्तामणि - नाममाला** : आचार्य हेमचन्द्र। प्रकाशक : श्री रांदेररोड जैनसंघ, अडाजण पाटीया, रादेररोड, सूरत। ई० सन् २००३।

५. **अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग १ से ७), द्वितीय संस्करण। श्री अभिधान राजेन्द्र कोष प्रकाशन संस्था, अहमदाबाद। ई० सन् १९८६।

६. **अविमारक (नाटक)** : महाकवि भास। 'भासनाटकचक्र' चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी। ई० सन् १९९८।

७. **अष्टपाहुड** : आचार्य कुन्दकुन्द। शान्तिवीरनगर, श्री महावीर जी (राजस्थान)। ई० सन् १९६८।
— दंसणपाहुड।
— चारित्तपाहुड।
— सुत्तपाहुड।
— बोधपाहुड।
— भावपाहुड।
— मोक्खपाहुड।
— लिंगपाहुड।
— सीलपाहुड।

— श्रुतसागरसूरिकृत संस्कृतटीका।
— पं० पन्नालाल साहित्याचार्यकृत हिन्दी अनुवाद।

८. **अष्टसहस्री** (भाग १, २, ३) : आचार्य विद्यानन्द। दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) उ० प्र०। ई० सन् १९९०।

९. **आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन**—मुनि श्री नगराज जी डी० लिट्०। प्रथम खण्ड के प्रकाशक : कान्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली। ई० सन् १९८७। द्वितीय खण्ड के प्रकाशक : अर्हत् प्रकाशन, कलकत्ता। ई० सन् १९८२।

१०. **आचारांग** (प्रथम श्रुतस्कन्ध) : मुम्बापुरीय श्री सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति मुंबई। मुद्रण स्थान-सूरत। ई० सन् १९३५।
— भद्रबाहुकृत निर्युक्ति।
— शीलांकाचार्यकृत वृत्ति।

११. **आचारांगसूत्र**—प्रथम श्रुतस्कन्ध : अनुवादक—मुनिश्री सौभाग्यमल जी। प्रकाशक—जैन साहित्य समिति, नयापुरा, उज्जैन। वि० सं० २००७। द्वितीय श्रुतस्कन्ध : अनुवादक —पं० वसन्तीलाल नलवाया। प्रकाशक—धर्मदास जैन मित्रमण्डल, रतलाम, म० प्र०। ई० सन् १९८२।

१२. **आचारांगचूर्णि** : श्री जिनदास गणी। श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम। ई० सन् १९४१।

१३. **आतुरप्रत्याख्यान** : वीरभद्र। प्रकाशक—बालाभाई ककलभाई अहमदाबाद। वि० सं० १९६२।

१४. **आदिपुराण** (भाग १,२) : आचार्य जिनसेन। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९८८।
— अनुवाद : पं० (डॉ०) पन्नालाल साहित्याचार्य।

१५. **आप्तपरीक्षा** : विद्यानन्द स्वामी। भारतवर्षीय अनेकान्त परिषद्, लोहारिया (राज०)। ई० सन् १९९२।

१६. **आप्तमीमांसा** : आचार्य समन्तभद्र। वीरसेवा मंदिर ट्रस्ट प्रकाशन वाराणसी—५। ई० सन् १९८९।
— अनुवाद : पं० जुगलकिशोर मुख्तार।

१७. **आराधना कथा कोश** : ब्रह्मचारी नेमिदत्त। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्। ई० सन् १९९३।

१८. **आलापपद्धति** : आचार्य देवसेन। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्, लोहरिया (राज०)। ई० सन् १९९०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१९. **आवश्यकनिर्युक्ति** (भाग १) : भद्रबाहुस्वामी। भेरूलाल कनैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, मुम्बई। वि० सं० २०३८।
— हारिभद्रीय वृत्ति : हरिभद्रसूरि।
२०. **आवश्यक - मूलभाष्य** (आवश्यकसूत्र - मूलभाष्य) : कर्त्ता का नाम अज्ञात है। आवश्यकनिर्युक्ति की हारिभद्रीयवृत्ति में उद्धृत तथा जिन-भद्रगणी के विशेषावश्यकभाष्य में अन्तर्भूत।
२१. **आवश्यकसूत्र** (पूर्वभाग एवं उत्तरभाग) : गणधर गौतमस्वामी। श्री ऋषभदेव केशरी-मल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम। ई० सन् १९२८ एवं १९२९।
२२. **इष्टोपदेश** : पूज्यपाद स्वामी। परमश्रुत प्रभावक मण्डल, चौकसी चैम्बर, खारा कुआ, जवेरी बाजार, बम्बई-२। ई० सन् १९५४।
२३. **ईशादिदशोपनिषद् (शांकरभाष्यसहित)** : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ई० सन् १९७८।
२४. **ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्** : चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। ई० सन् १९९५।
— परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्।
— बृहदारण्यकोपनिषद्।
— जाबालोपनिषद्।
— नारदपरिव्राजकोपनिषद्।
— तुरीयातीतोपनिषद्।
— संन्यासोपनिषद्।
— भिक्षुकोपनिषद्।
— छान्दोग्योपनिषद्।
— मुण्डकोपनिषद्।
— कठोपनिषद्।
— ईशावास्योपनिषद्।
— श्वेताश्वतरोपनिषद्।
— याज्ञवल्क्योपनिषद्।
२५. **उत्तराध्ययनसूत्र** : वीरायतन प्रकाशन, आगरा-२।
— सम्पादन : साध्वी चन्दना दर्शनाचार्य।
२६. **उत्तरभारत में जैनधर्म** : चिमनलाल जैचन्द्र शाह। प्रकाशक : सेवामन्दिर रावटी, जोधपुर। ई० सन् १९९०।
— अँगरेजी से हिन्दी अनुवाद : कस्तूरमल बांठिया।
२७. **उदानपालि** (सुत्तपिटक, खुद्दक निकाय) : विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी (नासिक)। ई० सन् १९९५।

२८. **उपदेशमाला** (उवएसमाला) : श्री धर्मदास गणी। प्रकाशक : धनजी भाई देवचन्द्र जौहरी, मुम्बई।
— विशेषवृत्ति (दोघट्टी टीका) : रत्नप्रभसूरि।
२९. **ओघनिर्युक्ति** : भद्रबाहु स्वामी। आगमोदय समिति मेहसाना। ई० सन् १९१९।
— वृत्तिकार : द्रोणाचार्य।
३०. **कठोपनिषद्** : गीता प्रेस गोरखपुर। वि० सं० २०२४।
— शांकरभाष्य : श्री शंकराचार्य।
३१. **कल्पकौमुदीवृत्ति** : श्री शान्तिसागरकृत कल्पसूत्रव्याख्या। श्री ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम। ई० सन् १९३६।
३२. **कल्पनिर्युक्ति** (कल्पसूत्रनिर्युक्ति) : श्वेताम्बर भद्रबाहु-द्वितीय। मुनि कल्याण विजय जी - कृत 'श्रमण भगवान् महावीर' (पृ. ३३६) में तथा श्री ताटक गुरु जैन ग्रन्थालय उदयपुर (राज०) द्वारा प्रकाशित 'कल्पसूत्र' की श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री-लिखित प्रस्तावना (पृ. १६) एवं परिशिष्ट १ की टिप्पणी क्र.३ में उल्लेख है।
३३. **कल्पप्रदीपिकावृत्ति** : श्री संघविजयगणिकृत कल्पसूत्रवृत्ति। प्रकाशन : सेठ वाडीलाल चकुभाई देवीशाह पाटक। वि० सं० १९९१।
३४. **कल्पलता व्याख्या** : समयसुन्दरगणिकृत कल्पसूत्रव्याख्या। निर्णयसागर मुद्रणयन्त्रालय, मुम्बई। ई० सन् १९३९।
३५. **कल्पसमर्थन** : (कल्पसूत्रान्तर्गत अधिकार-बोधक)। ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम। वि० सं० १९९४।
३६. **कल्पसूत्र** : प्राकृत भारती, जयपुर।
३७. **कल्पसूत्र** : भाषानुवाद : आर्यारत्न सज्जनश्री। वि० सं० २०३८।
३८. **कसायाहुड** (भाग १, ८, १२, १३, १४, १५, १६) : आचार्य गुणधर। भारतवर्षीय दि० जैन संघ, चौरासी, मथुरा। ई० सन् १९७४---। द्वितीय संस्करण।
— चूर्णिसूत्र : यतिवृषभाचार्य।
— जयधवला टीका : आचार्य वीरसेन।
— प्रस्तावना : १. ग्रन्थपरिचय एवं २. ग्रन्थकारपरिचय : सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाश-चन्द्र शास्त्री, (पृ. ३-७३) ३. विषयपरिचय : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य। (पृ. ७३-१०६) ("भूमिका के मुख्य तीन भाग हैं : ग्रन्थ, ग्रन्थकार और विषय-परिचय। इनमें से आदि के दो स्तम्भ पं० कैलाशचन्द्र जी ने लिखे हैं और अन्तिम स्तम्भ पं० महेन्द्रकुमार जी ने लिखा है।" सम्पादकीय वक्तव्य/ पृ. १४ ब)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३९. **कसायपाहुडसुत्त** : आचार्य गुणधर। श्री वीरशासन संघ, कलकत्ता। ई० सन् १९५५।
— चूर्णिसूत्र : आचार्य यतिवृषभ।
— सम्पादन-अनुवाद-प्रस्तावना : पं० हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री।

४०. **कादम्बरी** (पूर्वभाग) : बाणभट्ट। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
— संस्कृतटीका : श्वेताम्बराचार्य श्री भानुचन्द्र गणी।

४१. **कादम्बरी** : बाणभट्ट। सम्पादक : आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन' एवं राजेन्द्रकुमार शास्त्री। प्रकाशक : साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ (उ०प्र०) / अष्टम संस्करण, ई० सन् १९९०।

४२. **कार्तिकेयानुप्रेक्षा** : स्वामिकुमार। परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात)। ई० सन् १९७८।
— अँगरेजी प्रस्तावना : प्रो० ए० एन० उपाध्ये।
— हिन्दी-अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।

४३. **कालिदास की तिथिसंशुद्धि** : डॉ० रामचन्द्र तिवारी। ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली। ई० सन् १९८९।

४४. **काव्यानुशासन** (स्वोपज्ञवृत्ति-सहित): वैयाकरण एवं काव्यशास्त्री, 'कलिकालसर्वज्ञ,' आचार्य हेमचन्द्र। प्रवचन प्रकाशन, पूना। वि० सं० २०५८।
— संस्कृत व्याख्या : पण्डित शिवदत्त एवं काशीनाथ।

४५. **काव्यप्रकाश** : मम्मटाचार्य। ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी। ई० सन् १९६०।
— हिन्दी व्याख्या : विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि।

४६. **कूर्मपुराण** : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। ई० सन् १९९३।

४७. **क्या दिगम्बर प्राचीन हैं?** लेखक : शिशु आचार्य नरेन्द्रसागर सूरि। शेठ श्री अभेचंद गुलाबचंद झवेरी परिवार, मुम्बई के सौजन्य से प्रकाशित। प्राप्तिस्थान—१. जम्बूद्वीप पेढ़ी पालीताणा, २. ज्ञानशाला गिरिराज सोसायटी पालीताणा। ई० सन् १९९५।

४८. **खरा सो मेरा** : डॉ० सुदीप जैन। कुन्दकुन्द भारती (प्राकृत भवन) नई दिल्ली। ई० सन् १९९९।

४९. **खारवेल प्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन**-चन्द्रकान्तबाली शास्त्री। प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली। ई० सन् १९८८।

५०. **गुणस्थान-सिद्धान्त : एक विश्लेषण**—डॉ० सागरमल जैन। पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी। ई० सन् १९९६।

५१. **गुरुपरम्परा से प्राप्त दिगम्बर जैन आगम : एक इतिहास**—डॉ० एम० डी० वसन्तराज। श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान नरिया, वाराणसी-५। ई० सन् २००१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५२. **गोम्मटसार-कर्मकाण्ड** (भाग १,२) : आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली। ई० सन् १९९६।
— जीवतत्त्वप्रदीपिका-कर्णाटवृत्ति : केशववर्णी।
— कर्णाटवृत्ति का 'जीवतत्त्वप्रदीपिका' नाम से ही संस्कृतरूपान्तर : श्री नेमिचन्द्र।
५३. **गोम्मटसार-जीवकाण्ड** (भाग १, २) : आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली। ई० सन् १९९७।
— जीवतत्त्वप्रदीपिका-कर्णाटवृत्ति : केशव वर्णी।
— जीवतत्त्वप्रदीपिका-संस्कृतरूपान्तर : श्री नेमिचन्द्र।
५४. **चाणक्यशतक** : आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य।
५५. **छेदपिण्ड** : आचार्य इन्द्र (इन्द्रनन्दी)। 'प्रायश्चित्तसंग्रह'—माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला (वि० सं० १९७८) में संगृहीत।
५६. **छेदशास्त्र** : (कर्त्ता अज्ञात-पु.जै.वा.सू. / प्रस्ता. / पृ.१०९) 'प्रायश्चित्तसंग्रह'—माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला (वि० सं० १९७८) में संगृहीत।
५७. **जातक** (तृतीय खण्ड)—अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। ई० सन् १९९०।
५८. **जातक-अट्ठकथा** (सुत्तपिटक-खुद्दकनिकाय)—तृतीयभाग। विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी। ई० सन् १९९८।
५९. **जातकपालि** (सुत्तपिटक-खुद्दकनिकाय)—द्वितीयभाग। विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी। ई० सन् १९९८।
६०. **जातकमाला** : आर्यशूर। सम्पादक-अनुवादक : सूर्यनारायण चौधरी। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ई० सन् २००१।
६१. **जिनमूर्ति-प्रशस्ति-लेख** : कमलकुमार जैन। श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर छतरपुर (म.प्र.)। ई० सन् १९८२।
६२. **जिनशासन की कीर्तिगाथा** : डॉ० कुमारपाल देसाई। श्री अनिलभाई गाँधी (ट्रस्टी)। १०८ जैनतीर्थदर्शनभवन ट्रस्ट, श्री समवसरण महामन्दिर, पालिताणा-३६४२७०।
६३. **जिनसहस्त्रनामटीका** : श्रुतसागरसूरि।
६४. **जिनागमों की मूलभाषा** : डॉ० नथमल टाँटिया। प्राकृत टेस्ट सोसायटी, अहमदाबाद।
६५. **जीवसमास** : अज्ञात पूर्वधर आचार्य (जिनका नाम ज्ञात नहीं है)। अनुवादिका : साध्वी विद्युत्प्रभाश्री। पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी। ई० सन् १९९८।
— भूमिका : डॉ० सागरमल जैन।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६६. **जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा**—श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री। प्रकाशक—श्री तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राज०)। ई० सन् १९७७।

६७. **जैन कथामाला** (भाग ४८) (आधारग्रन्थ : १. उपदेशमाला २. आख्यानक मणिकोश) : मधुकर मुनि। मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर (राज०)।

६८. **जैन तत्त्वविद्या** : मुनि श्री प्रमाणसागर जी। भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली। ई० सन् २०००।

६९. **जैनधर्म** : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री। भारतीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा (उ.प्र.)। ई० सन् १९७५।

७०. **जैनधर्म और दर्शन** : मुनि श्री प्रमाणसागर जी। शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। ई० सन् १९९६।

७१. **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (प्रथमभाग) : आचार्य हस्तीमल जी।

७२. **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (द्वितीय भाग/द्वितीय संस्करण) : आचार्य हस्तीमल जी। जैन इतिहास समिति, जयपुर (राजस्थान) ई० सन् १९८७।

७३. **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (तृतीय भाग/प्रथम संस्करण) : आचार्य हस्तीमल जी। जैन इतिहास समिति, जयपुर (राजस्थान)। ई० सन् १९८३।

७४. **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (चतुर्थ भाग) : आचार्य हस्तीमल जी। जैन इतिहास समिति, जयपुर (राजस्थान)। ई० सन् १९८७।

७५. **जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय** : डॉ० सागरमल जैन। पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी। ई० सन् १९९६।

७६. **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** : डॉ० सागरमल जैन। प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)। ई० सन् २००४।

७७. **जैनधर्म के प्रभावक आचार्य** : साध्वी संघमित्रा। जैन विश्वभारती, लाड़नूं (राज०)। ई० सन् २००१।

७८. **जैनधर्म के सम्प्रदाय** : डॉ० सुरेश सिसोदिया। आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर (राजस्थान)। ई० सन् १९९४।

७९. **जैन निबन्धरत्नावली** (प्रथम भाग) : पं० मिलापचन्द्र कटारिया एवं श्री रतनलाल कटारिया। प्रकाशक : श्री वीरशासन संघ, कलकत्ता। ई० सन् १९६६।

८०. **जैन निबन्धरत्नावली** (द्वितीय भाग) : पं० मिलापचन्द्र कटारिया। भारतवर्षीय दि० जैन संघ, चौरासी, मथरा। ई० सन् १९९०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

८१. **जैन भारती** : (दिगम्बर जैन नरसिंहपुरा नवयुवक मण्डल भीण्डर (मेवाड़) के मन्त्री द्वारा लिखित 'भट्टारक चर्चा' नामक पुस्तिका (ई० सन् १९४१) में उद्धृत)

८२. **जैन विद्या के आयाम–ग्रन्थाङ्क २** (Aspects of Jainology, Vol. II)। पं० बेचरदास दोशी स्मृति ग्रन्थ। प्रकाशक : पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी, ई० सन् १९८७।

८३. **जैन शिलालेख संग्रह** (भाग १) : संग्रहकर्त्ता–डॉ० हीरालाल जैन। माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति। वि० सं० १९८४ (ई० सन् १९२७)।

८४. **जैन शिलालेख संग्रह** (भाग २) : संग्रहकर्त्ता—पं० विजयमूर्ति। माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति मुम्बई। ई० सन् १९५२।

८५. **जैन शिलालेख संग्रह** (भाग ३) : संग्रहकर्त्ता—पं० विजयमूर्ति। प्रकाशक—माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, मुम्बई। ई० सन् १९५७।

— प्रस्तावना : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी।

८६. **जैन शिलालेख संग्रह** (भाग ४) : संग्राहक—सम्पादक : डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर। भारतीय ज्ञानपीठ काशी। वीर नि० सं० २४९१।

८७. **जैन साहित्य और इतिहास** (प्रथम संस्करण) : पं० नाथूराम प्रेमी। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई। ई० सन् १९४२।
द्वितीय संस्करण : प्रकाशक—संशोधित साहित्य-माला, ठाकुरद्वार, बम्बई -२। ई० सन् १९५६।

८८. **जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश** (प्रथम खण्ड) : पं० जुगलकिशोर मुख्तार। वीरशासन संघ कलकत्ता। ई० सन् १९५६।

८९. **जैन साहित्य का इतिहास (पूर्वपीठिका)** : पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री। श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी। वीर नि० सं० २४८९।

९०. **जैन साहित्य का इतिहास** (भाग १, २) : सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री। श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी। वीर निर्वाण सं० २५०२।

९१. **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** (भाग ३) : डॉ० मोहनलाल मेहता। पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान, वाराणसी। ई० सन् १९६७।

९२. **जैन साहित्य में विकार** : पं० बेचरदास जैन। अनुवादक : तिलकविजय जी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन युवकसंघ, ललितपुर। वीर नि० सं० २४५८।

९३. **जैनाचार्य परम्परा महिमा** (३४९ श्लोकात्मक ग्रन्थ, अप्रकाशित) : रचयिता–श्रवण बेलगोल के ३१ वें भट्टारक श्री चारुकीर्ति। इस ग्रन्थ के नाम एवं संस्कृत पद्यों का उल्लेख श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने अपने ग्रन्थ 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास', भाग ३ में पृष्ठ १५२ से १७७ तक किया है और लिखा है कि यह अप्रकाशित ग्रन्थ आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार शोध प्रतिष्ठान, लालभवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–३ में उपलब्ध है।

९४. **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश** (भाग १–४) : क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली। ई० सन् १९८५, १९८६, १९८७, १९८८।

९५. **ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र** : (ज्ञातृधर्मकथाङ्ग)। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर। ई० सन् १९८१।
— प्रधान सम्पादक : युवाचार्य श्री मिश्रीलाल जी महाराज 'मधुकर'।
— अनुवादक – विवेचक – सम्पादक : पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल।

९६. **ज्ञानार्णव** : आचार्य शुभचन्द्र। श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास। ई० सन् १९७५।

९७. **डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ** । पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी। ई० सन् १९९८।

९८. **तत्त्वनिर्णयप्रासाद** : श्वेताम्बराचार्य मुनि श्री विजयानन्द सूरीश्वर 'आत्माराम'। प्रसिद्धकर्त्ता : अमरचंद पी० (पद्मा जी) परमार, मुम्बई।

९९. **तत्त्वार्थकर्तृ-तन्मतनिर्णय** : सागरानन्दसूरीश्वर जी महाराज (श्वेताम्बर)। **प्रकाशक** : श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था रतलाम। वि० सं० १९९३।

१००. **तत्त्वार्थराजवार्तिक** (तत्त्वार्थवार्तिक, भाग १, २) : भट्ट अकलंक देव। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९९३।
— सम्पादक : प्रो० महेन्द्र कुमार जैन, न्यायाचार्य।

१०१. **तत्त्वार्थवृत्ति** : श्रुतसागर सूरि। भारतीय ज्ञानपीठ काशी। ई० सन् १९४९।
— प्रस्तावना : प्रो० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य।

१०२. **तत्त्वार्थसार** : अमृतचन्द्रसूरि। सम्पादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य। श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी,। ई० सन् १९७०।

१०३. **तत्त्वार्थसूत्र** (सर्वार्थसिद्धि) : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९९५।
१०४. **तत्त्वार्थसूत्र** : श्री उमास्वाति वाचक। ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम। ई० सन् १९९६।
— हारिभद्रीय वृत्ति : श्री हरिभद्रसूरि।
१०५. **तत्त्वार्थसूत्र** (विवेचनसहित) : पं० सुखलाल संघवी। पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान, वाराणसी-५। ई० सन् १९९३।
१०६. **तत्त्वार्थसूत्र** (मोक्षशास्त्र) : बृहत्प्रभाचन्द्र। प्रकाशक : समीचीनधर्म-प्रबोध-संरक्षण-संस्थान कोटा (राज०)।
१०७. **तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय** : उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम जी महाराज (पंजाबी)। प्रकाशक : लाला शादीराम गोकुलचंद जौहरी, चाँदनी चौक, देहली। ई० सन् १९३४।
१०८. **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** (श्वेताम्बरमान्य तत्त्वार्थसूत्र) : परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास। ई० सन् १९९२।
— तत्त्वार्थाधिगमभाष्य : उपर्युक्त पर आचार्य उमास्वाति द्वारा रचित भाष्य।
१०९. **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** (स्वोपज्ञभाष्ययुक्त) : श्री उमास्वाति-वाचक। प्रकाशक : जीवनचन्द साकरचन्द जवेरी, मुंबई एवं सूरत (गुजरात)। प्रथम भाग—ई० सन् १९२६, मुंबई। द्वितीयभाग—ई० सन् १९३० सूरत।
— तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति : श्री सिद्धासेन गणी।
११०. **तर्कभाषा** : केशवमिश्र। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी। ई० सन् १९७७।
— हिन्दी व्याख्या : आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि।
१११. **तित्थगोलियपयन्नु** (अथवा तित्थोगालियपयन्नु = तीर्थोद्गार)।
११२. **तिलोयपण्णत्ती** (भाग १, २, ३) : आचार्य यतिवृषभ। प्रकाशक : श्री १००८ चन्द्रप्रभ दि० जैन अतिशयक्षेत्र, देहरा-तिजारा (अलवर, राजस्थान)। ई० सन् १९९७।
— अनुवाद : आर्यिका विशुद्धमति जी।
११३. **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा** (खण्ड १, २, ३, ४) : डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य। द्वितीय संस्करण—आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला, बुढ़ाना (मुजफ्फरनगर) उ० प्र०। ई० सन् १९९२।
११४. **तैत्तिरीय आरण्यक**।
११५. **त्रिलोकसार** : आचार्य नेमिचन्द्र।
११६. **थेरीगाथा—अट्ठकथा** (सुत्तपिटक-खुद्दकनिकाय) : विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

११७. **दक्षिण भारत में जैनधर्म** : सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् २००१।

११८. **दर्शनसार** : आचार्य देवसेन। अनुवाद एवं विवेचना : पं० नाथूराम जी प्रेमी। जैन ग्रन्थ कार्यालय, हीराबाग, बम्बई। वि० सं० १९७४।

११९. **दशवैकालिकसूत्र** : आचार्य शय्यंभव। भारतीय प्राच्य तत्त्व प्रकाशन समिति पिंडवाड़ा (राजस्थान)। वि० सं० २०३७।

— हारिभद्रीयवृत्ति : हरिभद्रसूरि।

१२०. **दाठावंस** (बौद्धग्रन्थ)।

१२१. **दि० जैन अतिशयक्षेत्र श्री महावीर जी का संक्षिप्त इतिहास** : डॉ. गोपीचन्द्र वर्मा बाँसवाड़ा। रामा प्रकाशन २६२६, रास्ता खजानेवाला, जयपुर।

१२२. **दिगम्बरत्व और दिगम्बरमुनि** : कामता प्रसाद जैन। दि० जैन युवा समिति, १५ भगवान् महावीर मार्ग, बड़ौत, उ० प्र०। ई० सन् १९९२।

१२३. **दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण** (प्रो. हीरालाल जी के आक्षेपों का निराकरण): आद्य अंश-लेखक : मक्खनलाल शास्त्री, मुरैना। प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन समाज बम्बई। वीर नि० सं० २४७१। द्वितीय एवं तृतीय अंश—सम्पादक : पं० रामप्रसाद शास्त्री बम्बई। प्रकाशक : दिगम्बर जैन पंचायत बम्बई। ई० सन् १९४४ एवं १९४६।

१२४. **दिव्यावादान** (रोमन लिपि में)—The Divyāvadān, by E.B. Cowell and R.A. Neil, Indological Book House, Delhi 1987 A.D.

१२५. **दिव्यावदान** (नागरी लिपि में)—सम्पादक : डॉ० पी० एल० वैद्य। प्रकाशक—मिथिला विद्यापीठ दरभंगा। ई० सन् १९९९।

१२६. **दीघनिकायपालि** : सम्पादन—अनुवाद : स्वामी द्वारिकादास शास्त्री। बौद्धभारती वाराणसी। ई० सन् १९९६।

— भाग १. सीलक्खन्धवग्ग।

— भाग २. महावग्ग।

— भाग ३. पाथिकवग्ग।

१२७. **द्रव्यस्वाभाव-प्रकाशक-नयचक्र** : श्री माइल्ल धवल। भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी। ई० सन् १९७१।

१२८. **धम्मपद** : व्याख्याकार—कन्छेदीलाल गुप्त और सत्कारि शर्मा वङ्गीय। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। ई० सन् १९६८।

१२९. **धम्मपद-अट्ठकथा**, भाग १,२ (सुत्तपिटक—खुद्दक निकाय) : विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी। ई० सन् १९९८।

१३०. **धम्मपद-अट्ठकथा,** भाग २ (सुत्तपिटक—खुद्दक निकाय) : नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा। ई० सन् १९७६।

१३१. **नन्दीसूत्र** : विवेचक—स्व. श्री केवलमुनि जी के शिष्य श्री लालमुनि जी के परिवार के सन्त मुनि श्री पारसकुमार जी (धर्मदास सम्प्रदाय)। प्रकाशक—अ० भा० साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ, सैलाना (म.प्र.)। ई० सन् १९८४।

१३२. **नियमसार** : आचार्य कुन्दकुन्द। ('कुन्दकुन्द भारती' में संगृहीत)।

१३३. **निशीथसूत्र** (स्वोपज्ञभाष्य सहित) : श्री विसाहगणी महत्तर। (प्रथम विभाग-पीठिका) सम्पादक : उपाध्याय कवि श्री अमरमुनि तथा मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल'। भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली। ई० सन् १९८२।

— विशेषचूर्णि : श्री जिनदास महत्तर।

— निशीथ : एक अध्ययन—पं० दलसुख मालवणिया।

१३४. **नीतिसार** (नीतिसार-समुच्चय) : इन्द्रनन्दी। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्। ई० सन् १९९०।

१३५. **न्यायकुमुदचन्द्र-परिशीलन** : प्रो० उदयचन्द्र जैन। प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.। ई० सन् २००१।

१३६. **न्यायकुसुमाञ्जलि** : उदयनाचार्य।

१३७. **न्यायदीपिका** : अभिनव धर्मभूषण यति। प्रकाशक : भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्। ई० सन् १९९०।

१३८. **न्यायमञ्जरी** : जयन्त भट्ट।

१३९. **न्यायावतारवार्तिकवृत्ति** : श्री शान्तिसूरि। सम्पादक : पण्डित दलसुख मालवणिया। प्रकाशक : सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद। ई० सन् २००२।

— प्रस्तावना : पं० दलसुख मालवणिया।

१४०. **पउमचरिउ** (भाग १,२,३,४,५) : महाकवि स्वयम्भू। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली। ई० सन् १९८९, १९७७, १९८९, २०००, २००१।

१४१. **पउमचरिय** : विमलसूरि।

१४२. **पञ्चतन्त्र-अपरीक्षितकारक** : विष्णु शर्मा। रामनारायणलाल बेनीमाघव, इलाहाबाद-२। ई० सन् १९७५।

१४३. **पंचमहागुरुभक्ति** : आचार्य कुन्दकुन्द। ('कुन्दकुन्द भारती' में संगृहीत)।

१४४. **पंचाशक** (पंचाशक-प्रकरण) : आचार्य हरिभद्रसूरि। पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१४५. **पंचास्तिकाय** : आचार्य कुन्दकुन्द। श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्री मद्राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात)। ई० सन् १९६९।
— समयव्याख्या (तत्त्वप्रदीपिका वृत्ति) : आचार्य अमृतचन्द्र।
— तात्पर्यवृत्ति : आचार्य जयसेन।
— बालावबोधभाषाटीका : पाण्डे हेमराज।
१४६. **पट्टावलीपराग** : पं० श्री कल्याणविजय गणी। प्रकाशक : कल्याणविजय शास्त्रसंग्रह समिति, जालौर (राजस्थान)। ई० सन् १९५६।
१४७. **पं० रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व**। आचार्य श्री शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला शान्तिवीरनगर, श्रीमहावीर जी (राजस्थान) ई० सन् १९८९।
१४८. **पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ**। सरस्वती-वरदपुत्र पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशन समिति, वाराणसी। ई० सन् १९८९।
१४९. **पण्णवणासुत्त** (भाग १,२) : श्री श्यामार्य वाचक। श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई २६। ई० सन् १९६९ एवं १९७१।
— सम्पादन एवं अँगरेजी प्रस्तावना : मुनि पुण्यविजय जी, पं० दलसुख मालवणिया एवं पं० अमृतलाल मोहनलाल भोजक।
१५०. **पद्मपुराण** (पद्मचरित—भाग १,२,३) : आचार्य रविषेण। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् २००१, २००२, २००३।
— सम्पादन-अनुवाद : डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य।
१५१. **पद्ममहापुराण** (वैदिक = हिन्दू)—द्वितीय भाग (भूमि, स्वर्ग, ब्रह्म एवं पातालखण्ड) भूमिका : प्रो० डॉ० चारुदेवशास्त्री। प्रकाशक : नाग पब्लिशर्स, जवाहरनगर, दिल्ली-७। ई० सन् १९८४।
१५२. **परमात्मप्रकाश एवं योगसार** : जोइंदुदेव। परमश्रुत प्रभावक मंडल, अगास। ई० सन् १९७३।
— संस्कृतटीका : ब्रह्मदेव।
— भाषा टीका : पं० दौलतराम जी।
— प्रस्तावना (Introduction) : ए० एन० उपाध्ये।
१५३. **परिशिष्टपर्व** : कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र। प्रकाशक : एशियाटिक सोसाइटी, ५७ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता। ई० सन् १८९१।
— सम्पादक : हर्मन जैकोबी।
१५४. **पाइअ-सद्द-महण्णवो** : (प्राकृत-हिन्दी-शब्दकोश) : पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ई० सन् १९८६।

१५५. **पातञ्जलयोगदर्शन** : महर्षि पतञ्जलि। कृष्णदास अकादमी, वाराणसी। ई० सन् १९९९।
— व्यासभाष्य : श्री व्यास।
१५६. **पात्रकेसरी-स्तोत्र** (जिनेन्द्रगुणसंस्तुति) : पात्रकेसरी (पात्रस्वामी)।
१५७. **पालि-हिन्दी कोश** : भदन्त आनन्द कौसल्यायन। राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-पटना। ई० सन् १९९९।
१५८. **पुरातन-जैनवाक्य-सूची** : पं० जुगलकिशोर मुख्तार। वीरसेवा मन्दिर, सरसावा, जिला-सहारनपुर (उ० प्र०)। ई० सन् १९५०।
१५९. **पिण्डनिर्युक्ति** : भद्रबाहुस्वामी। शाह नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी, मुंबई। ई० सन् १९१८।
— मलयगिरीया वृत्ति : आचार्य मलयगिरि।
१६०. **प्रकरणरत्नाकर** (चतुर्थभाग) : प्रकाशक—शा० भीमसिंह माणकनी वती, शा० भाणजी माया, मुंबई। ई० सन् १९१२। निर्णयसागर प्रेस मुम्बई।
१६१. **प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी** : श्री गौतमस्वामी - विरचित। प्रकाशक : आचार्य शान्तिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था। वीर संवत् २४७३।
— संस्कृतटीका : प्रभाचन्द्र।
— सम्पादक : पं० मोतीचन्द्र गौतमचन्द्र कोठारी, एम० ए०।
१६२. **प्रबोधचन्द्रोदय** : कृष्ण मिश्र यति। चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी। ई० सन् १९७७।
१६३. **प्रमेयकमलमार्तण्ड** (द्वितीयभाग) : आचार्य प्रभाचन्द्र। मुद्रक : पाँचूलाल जैन, कमल प्रिंटर्स मदनगंज-किशनगढ़ (राज०)। वीर नि० सं० २५०७।
— अनुवाद : आर्यिका जिनमती जी।
१६४. **प्रवचनपरीक्षा**-पूर्वभाग (स्वोपज्ञवृत्ति-सहित) : उपाध्याय धर्मसागर। ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम (म.प्र.)।
१६५. **प्रवचनसार** : आचार्य कुन्दकुन्द। परमश्रुत प्रभावक श्रीमद्राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला, श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगास (गुजरात)। ई० सन् १९६४।
— तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति : आचार्य अमृतचन्द्र सूरि।
— तात्पर्यवृत्ति : आचार्य जयसेन।
— बालावबोध भाषाटीका : पाण्डे हेमराज।
— अँगरेजी-प्रस्तावना (Introduction): प्रो० ए० एन० उपाध्ये।
१६६. **प्रवचनसारोद्धार** (उत्तरभाग) : श्री नेमिचन्द्र सूरि। प्रकाशक : सेठ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था, मुंबई। ई० सन् १९२२। निर्णयसागर प्रेस मुम्बई।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

— संस्कृतवृत्ति : श्री सिद्धसेनसूरि शेखर

१६७. **प्रवचनसारोद्धार** : श्री नेमिचन्द्रसूरि। प्रकाशक : श्री जैन श्वे. मू. तपागच्छ गोपीपुरा संघ, सूरत। ई० सन् १९८८।

— टिप्पणीकार : श्री उदयप्रभ सूरि।

१६८. **प्रशमरतिप्रकरण** : श्वेताम्बराचार्य उमास्वाति। परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात)। वि० सं० २०४४।

— हारिभद्रीय टीका : श्री हरिभद्र सूरि।

१६९. **प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य में गुणस्थान की अवधारणा** : साध्वी डॉ० दर्शनकलाश्री। श्री राजराजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, जयंतसेन म्यूजियम, मोहनखेड़ा (राजगढ़) धार, म० प्र०। ई० सन् २००७।

१७०. **प्राकृत भाषाओं का व्याकरण** : डॉ० रिचार्ड पिशल। विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-३। ई० सन् १९५८।

— जर्मनभाषा से हिन्दी-अनुवाद : डॉ० हेमचन्द्र जोशी।

१७१. **प्राकृत साहित्य का इतिहास** : डॉ० जगदीशचन्द्र जैन। द्वितीय संस्करण। चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी। ई० सन् १९८५।

१७२. **प्राचीन भारतीय संस्कृति** : बी० एन० लूनिया। लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक-प्रकाशक, आगरा-३। ई० सन् १९७०।

१७३. **बारस अणुवेक्खा** : आचार्य कुन्दकुन्द।

१७४. **बृहत्कथाकोश** : आचार्य हरिषेण। सिंघी जैन ग्रन्थमाला। ई० सन् १९४३।
अँगरेजी प्रस्तावना : डॉ० ए० एन० उपाध्ये।

१७५. **बृहत्कल्पसूत्र** (मूलनिर्युक्तिसहित) : स्थविर आर्य भद्रबाहु स्वामी।

— Vol. V (चतुर्थ एवं पंचम उद्देश)। ई० सन् १९३८।

— Vol. VI (षष्ठ उद्देश)। ई० सन् १९४२। प्रकाशक श्री आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर।

— भाष्य : श्री संघदासगणी क्षमाश्रमण।

— वृत्ति : आचार्य श्री मलयगिरि, जिसे आचार्य श्री क्षेमकीर्ति ने पूर्ण किया।

१७६. **बृहत्संहिता** : वराहमिहिर।

१७७. **बृहदारण्यकोपनिषद्** : ईशादिदशोपनिषद्। मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली। ई० सन् १९७८।

— शांकरभाष्य : श्री शंकराचार्य।

१७८. **बृहद्द्रव्यसंग्रह** : नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव। परमश्रुत प्रभावक मंडल, अगास (गुजरात)। वि० सं० २०२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

— संस्कृतटीका : ब्रह्मदेव।
१७९. **ब्रह्मसूत्र** : बादरायण व्यास। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ई० सन् १९९८।
— शांकरभाष्य : श्री शंकराचार्य।
१८०. **ब्रह्माण्डपुराण** (खण्ड १,२) : प्रकाशक—डॉ० चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, बरेली (उ० प्र०) ई० सन् १९८८।
१८१. **भक्तपरिज्ञा** : वीरभद्र। बालाभाई ककलभाई, अहमदाबाद। वि० सं० १९६२।
१८२. **भगवती-आराधना** (भाग १) : शिवार्य। जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर। ई० सन् १९७८।
१८३. **भगवती आराधना** : शिवार्य। जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर। ई० सन् २००६।
— विजयोदयाटीका : अपराजित सूरि।
— प्रस्तावना एवं अनुवाद : सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।
१८४. **भगवती-आराधना** : शिवार्य। प्रकशक : विशम्बरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, देहली।
१८५. **भगवती-आराधना** : शिवार्य। प्रकाशक : हीरालाल खुशालचंद दोशी, फलटण। ई० सन् १९९०।
— विजयोदयाटीका : अपराजित सूरि।
— अनुवाद : सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।
१८६. **भगवतीसूत्र : एक परिशीलन**- आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि। प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राज०)। वि० सं० २०४९।
१८७. **भगवद्गीता** : शांकरभाष्य।
१८८. **भगवान् महावीर का अचेलकधर्म** : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री। भारतवर्षीय दि० जैन संघ, चौरासी, मथुरा। वि० सं० २००१।
१८९. **भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध** : कामता प्रसाद जैन। वीर नि० सं० २४५३।
१९०. **भट्टारक चर्चा** : लेखक एवं प्रकाशक—मन्त्री, दिगम्बर जैन नरसिंहपुरा नवयुवक मण्डल, भीण्डर (मेवाड़)। ई० सन् १९४१। (लेखक—मंत्री महोदय ने अपने नाम का उल्लेख नहीं किया।)
१९१. **भट्टारकमीमांसा** : पं० दीपचन्द वर्णी नरसिंहपुर-निवासी। प्रकाशक : वीर कालूराम राजेन्द्रकुमार परवार, रतलाम। वीरजयन्ती २४५४, सन् १९२७। तृतीय संस्करण के प्रकाशक : स्व० श्री मोहनलाल जी जैन, श्रीमती क्रान्तिबाई जैन, बाहुबली कॉलोनी सागर (म० प्र०)। ई० सन् २००३।
१९२. **भट्टारकसम्प्रदाय** : प्रो० विद्याधर जोहरापुरकर। जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर। ई० सन् १९५८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१९३. **भद्रबाहुचरित** : रत्ननन्दी (रत्नकीर्ति)। जैन भारती भवन, बनारस। ई० सन् १९११।

१९४. **भद्रबाहुचरित्र** : महाकवि रइधू। सम्पादक : डॉ० राजाराम जैन, दिगम्बर जैन युवकसंघ आरा (बिहार), ई० सन् १९९२।

१९५. **भागवतपुराण** (श्रीमद्भागवत महापुराण) : गीता प्रेस गोरखपुर। वि० सं० २०५७।

१९६. **भारतीय इतिहास एक दृष्टि** : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन। भारतीय ज्ञानपीठ। सन् १९९९।

१९७. **भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय मध्यप्रदेश** : १३वीं शती तक : डॉ० कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन'। श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, डी-३०२, विवेक विहार, दिल्ली। ई० सन् २००१।

१९८. **भारतीय पुरालेखों का अध्ययन** : डॉ० शिवरूप सहाय। मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी। ई० सन् १९९९।

१९९. **भारतीय संस्कृति का विकास : वैदिकधारा** : डॉ० मंगलदेव शास्त्री। समाज विज्ञान परिषद्, काशी विद्यापीठ बनारस। १९५६ ई०।

२००. **भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान** : डॉ० हीरालाल जैन। मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल। ई० सन् १९७५।

२०१. **भावना-द्वात्रिंशतिका** : आचार्य अमितगति। ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, पृ० ४७५। सम्पादक —डॉ.० ए० एन० उपाध्याय एवं पं० फूलचन्द्र शास्त्री। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

२०२. **भावसंग्रह** (प्राकृत) : देवसेनाचार्य।

२०३. **भावसंग्रह** : वामदेव। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्, लोहारिया (राजस्थान)।

२०४. **मज्झिमनिकाय** (सुत्तपिटक) : सम्पादक : भिक्षु जगदीश कश्यप। बिहार राजकीय पालि-प्रकाशन मण्डल। ई० सन् १९५८।

— १. मूल पण्णासक।

— २. मज्झिम पण्णासक।

२०५. **मज्झिमनिकायपालि** (सुत्तपिटक) : सम्पादक-अनुवादक : स्वामी द्वारिकादास शास्त्री। बौद्ध भारती, वाराणसी।

— १. मूल पण्णासक। ई० सन् १९९८।

— २. मज्झिम पण्णासक। ई० सन् १९९९।

— ३. उपरि पण्णासक। ई० सन् २०००।

२०६. **मत्स्यपुराण** (पूर्वभाग, उत्तरभाग) : हिन्दी साहित्य सम्मलेन प्रयाग। ई० सन् १९८८-८९।

२०७. **महापुराण** : आचार्य जिनसेन। भारतीय ज्ञानपीठ काशी। ई० सन् १९५१।

२०८. **महाभारत** (आदिपर्व/अध्याय १-७) : श्री वेदव्यास। गीता प्रेस गोरखपुर (उ०प्र०)। नवम्बर १९५५ ई०।

२०९. **महाभारत** (शान्तिपर्व) प्रकाशक : वसन्त श्रीपाद सातवलेकर। स्वाध्याय मण्डल, किल्ला-पारडी (बलसाड़) गुजरात। ई० सन् १९८०।

२१०. **महावग्गपालि** (विनयपिटक) : सम्पादक-अनुवादक : स्वामी द्वारिकादास शास्त्री। बौद्ध भारती, वाराणसी। ई० सन् १९९८।

२११. **मानतुङ्गाचार्य और उनके स्तोत्र** : प्रो० मधुसूदन ढाकी और डॉ० जितेन्द्र शाह।

२१२. **मानवभोज्यमीमांसा** : मुनि कल्याणविजय जी गणी। श्री कल्याणविजय-शास्त्रसंग्रह-समिति, जालोर (राज०)। ई० सन् १९६१।

२१३. **मीमांसाश्लोकवार्तिक** : कुमारिल भट्ट।

२१४. **मुद्राराक्षस** (नाटक) : विशाखदत्त। ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

२१५. **मूलाचार** (पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध) : आचार्य वट्टकेर। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९९२, १९९६।

— आचारवृत्ति : आचार्य वसुनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्ती।

— हिन्दी-टीकानुवाद : आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी।

— प्रधान सम्पादकीय : ज्योति प्रसाद जैन।

२१६. **मूलचार** : आचार्य वट्टकेर। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्। ई० सन् १९९६।

— सम्पादकीय : डॉ० फूलचन्द्र प्रेमी और डॉ० श्रीमती मुन्नी जैन।

२१७. **मूलाराधना** (भगवती-आराधना) : शिवार्य। स्वामी देवेन्द्रकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला शोलापुर। ई० सन् १९३५।

— मूलाराधनादर्पण (संस्कृतटीका) : पं० आशाधर जी।

— हिन्दी-अर्थकर्त्ता : पं० जिनदास पार्श्वनाथ शास्त्री फड़कुले।

२१८. **मोक्षशास्त्र** (तत्त्वार्थसूत्र, जिनकल्पिसूत्र) : आचार्य प्रभाचन्द्र। समीचीन धर्मप्रबोध संरक्षण संस्थान, कोटा (राजस्थान)।

२१९. **मोटी साधु-वन्दना** (गुजराती) : छोटालाल जी महाराज। थानकवासी जैन उपाश्रय, लिमड़ी (सौराष्ट्र) ई० सन् १९९१।

२२०. **मोहेन-जो-दड़ो : जैन परम्परा और प्रमाण** : आचार्य विद्यानन्द जी। कुन्दकुन्द भारती, नयी दिल्ली। ई० सन् १९८८।

२२१. **यशस्तिलकचम्पू** : सोमदेवसूरि। प्रकाशक : तुकाराम जावजी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई। पूर्वखण्ड (द्वितीय संस्करण)। ई० सन् १९१६। उत्तरखण्ड (प्रथम संस्करण)। ई० सन् १९०३।

— संस्कृतव्याख्या : श्रुतसागरसूरि।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२२२. **यापनीय और उनका साहित्य** : श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया। वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन। ई० सन् १९८८।

२२३. **रत्नकरण्डश्रावकाचार** : स्वामी समन्तभद्र। श्री मुनिसंघ साहित्य प्रकाशन समिति, सागर म० प्र०। ई० सन् १९९२।

— पद्यानुवाद : आचार्य श्री विद्यासागर जी

— हिन्दी अनुवाद : डॉ० (पं०) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य।

२२४. **रत्नमाला** : शिवकोटि। 'सिद्धान्तसारादि संग्रह' में संगृहीत।

२२५. **लब्धिसार** (लब्धिसार-क्षपणासार) : नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। आचार्य श्री शिव-सागर ग्रन्थमाला, शान्तिवीर नगर, श्री महावीर जी। वीर नि० सं० २५०९।

— सम्पादक : ब्र० पं० रतनचन्द्र मुख्तार सहारनपुर, उ० प्र०।

२२६. **ललितविस्तरा** : आचार्य श्री हरिभद्रसूरि।

— पञ्जिका टीका : श्री मुनिचन्द्र सूरीश्वर जी

— हिन्दी-विवेचना : पंन्यासप्रवर श्री भानुविजय जी गणिवर।

— भूमिकालेखक : श्री सम्पूर्णानन्द जी, राज्यपाल, राजस्थान।

— परिचयलेखक : प्रो० डॉ० पी० एल० वैद्य, वाडिया कालेज, पूना।

२२७. **लाटीसंहिता** : पं० राजमल्ल। श्रावकाचारसंग्रह (भाग ३)। सम्पादक : पं० हीरालाल जैन शास्त्री। जैनसंस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर। ई० सन् २००३।

२२८. **लिङ्गपुराण** : संस्कर्त्ता : आचार्य जगदीश शास्त्री। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ई० सन् १९८०।

२२९. **लिंगप्राभृत (लिंगापाहुड)** : आचार्य कुन्दकुन्द।

२३०. **वरांगचरित** : जटासिंहनन्दी। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्पषिद्। ई० सन् १९९६।

२३१. **वात्सल्यरत्नाकर** (आचार्य श्री विमलसागर अभिनन्दन ग्रन्थ)—द्वितीय खण्ड। प्रकाशक : भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्, श्री दि० जैन बीसपंथी कोठी, मधुवन (शिखर जी)। ई० सन् १९९३।

२३२. **वायुपुराण** : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (इलाहाबाद)। ई० सन् १९८७।

२३३. **विद्वज्जनबोधक** : पं० पन्नालाल जी संघी

२३४. **विधि-मार्ग-प्रपा** : खरतरागच्छालंकार श्री जिनप्रभसूरि। श्री महावीर स्वामी जैन देरासर ट्रस्ट, ८ विजय वल्लभ चौक, पायुधनी, मुंबई-४००००३। ई० सन् २००५।

— अनुवाद : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)।

२३५. **विविधदीक्षा-संस्कारविधि** : आर्यिका शीतलमती जी। सम्पादिका- ब्र० मैनाबाई जैन, संघसंचालिका। आशीषप्रदाता-सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य सन्मतिसागर जी। मुद्रक-शिवशक्ति प्रिण्टर्स, ९, नेहरू बाजार, होटल तारावाली गली, उदयपुर (राज०)।

— प्रकथन : डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'। ५८४ म. गाँ. मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर- ४५२ ००१ (म० प्र०)। ई० सन् २००२।

२३६. **विशेषावश्यकभाष्य** (भाग २) : जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण। दिव्यदर्शन ट्रस्ट, ६८ गुलालवाड़ी, मुंबई ४०० ००४। वि० सं० २०३९।

— मलधारी हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति

२३७. **विष्णुपुराण** : गीता प्रेस गोरखपुर। वि० सं० २०५८।

२३८. **वीरवर्धमानचरित** : श्री सकलकीर्ति। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९७४।

— सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री।

२३९. **वेदान्तसार** : परमहंस परिव्राजकाचार्य सदानन्द योगीन्द्र। पीयूष प्रकाशन, इलाहाबाद। ई० सन् १९६८।

— तत्त्वपारिजात हिन्दीटीका : सन्तनारायण श्रीवास्तव्य।

२४०. **वैदिक माइथॉलॉजी** : ए० ए० मैक्डॉनल (A.A. Macdonell)। हिन्दी अनुवादक : रामकुमार राय। चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी। ई० सन् १९८४।

२४१. **वैदिक साहित्य और संस्कृति** : आचार्य बलदेव उपाध्याय। शारदा संस्थान, वाराणसी-५। ई० सन् १९९८।

२४२. **वैराग्यशतक** (भर्तृहरिशतक) : मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली। ई० सन् २००२।

२४३. **वैशेषिकसूत्रोपस्कार** (वैशेषिकसूत्र-व्याख्या) : आचार्य शंकर मिश्र। चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी।

२४४. **व्याकरण महाभाष्य** (पस्पशाह्निक) : महर्षि पतञ्जलि। चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी।

२४५. **व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र** (भगवतीसूत्र / तृतीयखण्ड / शतक ११-१९) : श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)।

— अनुवादक-विवेचक-सम्पादक : श्री अमर मुनि जी एवं श्रीचन्द सुराणा 'सरस'।

२४६. **शिवमहापुराण** - प्रस्तावना : अवधविहारीलाल अवस्थी। गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२४७. **श्रमण भगवान् महावीर** : पं० (मुनि) कल्याणविजय जी गणी। प्रकाशक : श्री क० वि० शास्त्र-संग्रह समिति, जालोर। वि० सं० १९९८, ई० सन् १९४१।

२४८. **श्रुतावतार** : विबुधश्रीधर। 'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' में संगृहीत।

२४९. **श्रुतावतार** : आचार्य इन्द्रनन्दी। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्, सोनागिर (दतिया) म० प्र०। ई० सन् १९९०।

२५०. **श्वेताम्बरमत-सामीक्षा** : पं० अजितकुमार शास्त्री। प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन युवक संघ।

२५१. **षट्खण्डागम**—सम्पादिका : ब्र० पं० सुमतिबाई शहा। श्री श्रुतभण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति, फलटण। ई० सन् १९६५।

२५२. **षट्खण्डागम** (द्वितीय संस्करण)—सम्पादिका : ब्र० पं० सुमतिबाई शहा। आ० शान्तिसागर 'छाणी' स्मृति ग्रन्थमाला, बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)। ई० सन् २००५।

२५३. **षट्खण्डागम** (पुस्तक १-१६) : पुष्पदन्त एवं भूतबलि। जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर। पुस्तक १, २—ई० सन् १९९२, पु० ३—ई० सन् १९९३, पु०४—ई० १९९६, पु० ५—ई० १९८६, पु० ६—ई० १९९३, पु० ७—ई० १९८६, पु० ८—ई० १९८७, पु० ९—ई० १९९०, पु० १०,११—ई० १९९२, पु० १२, १३—ई० १९९३, पु० १४—ई० १९९४, पु० १५,१६—ई० १९९५।

— धवलाटीका : आचार्य वीरसेन।

— सम्पादकीय (पुस्तक १) : डॉ० हीरालाल जैन एवं डॉ० ए० एन० उपाध्ये।

— प्रस्तावना (पुस्तक १) : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री।

२५४. **षट्खण्डागम-परिशीलन** : पं० बालचन्द्र शास्त्री। भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। ई० सन् १९८७।

२५५. **षट्पाहुड** : आचार्य कुन्दकुन्द। प्रकाशिका : शान्ति देवी बड़जात्या, गौहाटी। ई० सन् १९८९।

२५६. **षड्दर्शनसमुच्चय** : हरिभद्रसूरि। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन। ई० सन् १९८९।

— तर्करहस्यदीपिका टीका : गुणरत्नसूरि।

— प्रस्तावना : पं० दलसुख मालवणिया।

२५७. **संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास** : डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी। विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी। ई० सन् २००१।

२५८. **संस्कृत साहित्य का इतिहास** : बलदेव उपाध्याय। शारदा मंदिर वाराणसी। ई० सन् १९६५।

२५९. **संस्कृत-हिन्दी कोश** : वामन शिवराम आप्टे। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ई० सन् १९६९।

२६०. **संस्कृति के चार अध्याय** : रामधारी सिंह दिनकर। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-१। ई० सन् १९९७।

२६१. **समन्तभद्र ग्रन्थावली** : स्वामी समन्तभद्र। वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट प्रकाशन वाराणसी। ई० सन् १९८९।

१. आप्तमीमांसा (देवागम)

— अकलंकदेवकृत आप्तमीमांसाभाष्य।

— आचार्य वसुनन्दीकृत देवागमवृत्ति।

— पं० जुगलकिशोर मुख्तारकृत हिन्दीव्याख्या।

२. युक्त्यनुशासन।

३. स्वयम्भूस्तोत्र।

४. जिनशतक।

५. रत्नकरण्डक।

— अनुवादक : पं० जुगलकिशोर मुख्तार

२६२. **समयसार** : आचार्य कुन्दकुन्द। अहिंसा मंदिर प्रकाशन, १ दरियागंज, दिल्ली ७।

— आत्मख्याति व्याख्या : आचार्य अमृतचन्द्र सूरि।

— तात्पर्यवृत्ति : आचार्य जयसेन।

— हिन्दीटीका : पं० जयचन्द।

२६३. **समावायांगसूत्र**—प्रकाशक : सेठ माणेकलाल चुन्नीलाल, अहमदाबाद। ई० १९३८।

२६४. **समाधितन्त्र** : देवनन्दी, अपरनाम—पूज्यपादस्वामी। श्री वीरसेवा मंदिर, सरसावा (सहारनपुर)। ई० सन् १९३९।

२६५. **सम्मइसुत्त** (सन्मतिसूत्र, सन्मतितर्क) : आचार्य सिद्धसेन। ज्ञानोदय ग्रन्थ प्रकाशन समिति, नीमच (म० प्र०) ई० सन् १९७८।

— सम्पादक : देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच।

२६६. **सर्वार्थसिद्धि** (तत्त्वार्थसूत्र-वृत्ति) : पूज्यपाद स्वामी। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली। ई० सन् १९९५।

— सम्पादन-अनुवाद : सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री।

२६७. **सर्वार्थसिद्धि** : पूज्यपाद स्वामी। भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्। ई० सन् १९९५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२६८. **सागारधर्मामृत** : पं० आशाधर जी। प्रकाशक : मूलचन्द किशनदास कापड़िया, सूरत। ई० सन् १९४०।

— हिन्दी-टीकाकार : पं० देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री।

२६९. **सिद्धहेमशब्दानुशासन** (अष्टम अध्याय : प्राकृतव्याकरण) : 'कलिकालसर्वज्ञ' आचार्य हेमचन्द्र।

२७०. **सिद्धान्तसमीक्षा** (भाग ३)—प्रकाशक : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,बम्बई। ई० सन् १९४५।

२७१. **सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ।**

२७२. **सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दनग्रन्थ**—प्रकाशक : सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशन समिति, वाराणसी। ई० सन् १९८५।

२७३. **सूत्रकृतांगसूत्र** : (पंचम गणधर सुधर्मस्वामी-प्रणीत द्वितीय अंग)—प्रथम एवं द्वितीय भाग। प्रधान सम्पादक : श्री मिश्रीलाल जी महाराज 'मधुकर'। श्री आगमप्रकाशन समिति ब्यावर (राजस्थान)।

२७४. **सूर्यप्रकाश-परीक्षा** : पं० जुगलकिशोर मुख्तार। प्रकाशक : जौहरीमल जैन सराफ, दरीवाँकला, देहली। ई० सन् १९३४।

२७५. **सौन्दरनन्द** (महाकाव्य) : अश्वघोष। प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी।

२७६. **स्त्रीनिर्वाण प्रकरण** : ('शाकटायन व्याकरण' के साथ संलग्न। भारतीय ज्ञानपीठ। ई० सन् १९७१) : यापनीय-यतिग्रामाग्रणि-भदन्त-शाकटायनाचार्य, मूलनाम पाल्यकीर्ति (देखिए , पं० नाथूराम प्रेमी : 'शाकटायन और उनका शब्दानुशासन'/ 'जैन सिद्धान्त भास्कर'/ भाग ९/ किरण १/ जून १९४२)।

२७७. **स्थानांगसूत्र** (पंचम गणधर सुधर्म स्वामी-प्रणीत तृतीय अंग) : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज०)।

— अनुवादक-विवेचक : पं० हीरालाल शास्त्री।

२७८. **स्वामी समन्तभद्र** : पं० जुगलकिशोर मुख्तार। जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पो०—गिरगाँव, बम्बई। ई० सन् १९२५।

२७९. **हरिवंशपुराण** : आचार्य जिनसेन। भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली। ई० सन् १९९८।

— सम्पादन-अनुवाद-प्रस्तावना : डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य।

२८०. **हर्षचरित** : बाणभट्ट। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। ई० सन् १९९८।

— 'सङ्केत' संस्कृत व्याख्या : श्री शंकर कवि।

२८१. **हूमड़ जैनसमाज का सांस्कृतिक इतिहास** (भाग २)—सम्पादिका : श्रीमती कौशल्या पंतग्या। प्रकाशक : श्री अखिल भारतीय हूमड़ जैन इतिहास शोधसमिति, १, सुदर्शन सोसायटी, नारायणपुरा, अहमदाबाद।

English Books

1. Aspects of Jainology (Vol.III) : P.V. Research Institute, Varanasi.
—The Date of Kundakundācārya : M.A. Dhaky.

2. Gender And Salvation : Padmanabh S. Jaini , Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 1992 A.D.

3. Harappa And Jainism : T.N. Ramchandran, Published by Kundakunda Bharti Prakashan, New Delhi, 1987 A.D.
—Introduction : Dr. Jyotindra Jain.

4. History of Jaina Monachism (From Inscriptions And Literature) : By Shantaram Balchandra Deo. Deccan College Post-graduate And Research Institute, Poona 1956 A.D.

5. Indian Philosophy (Vol. II) : S. Rādhākrishṇan. Delhi Oxford Univesity Press.

6. Pañchāstikāyasāra : Āchārya Kundakunda, Bhārtiya Jnānpīth Publication, 1975 A.D.
—English Commentary & Introduction : Prof. A. Chakravartī Nayanār.

7. Sanskrit–English Dictionary : M. Monier Williams, Motilal Banarsi-das, Delhi, 1999 A.D.

8. The Hāthīgumphā Inscription of Khāravēla And the Bhabru Edict of Aśoka : By Shashikant. D.K. Printworld (P) Ltd., New Delhi—110015. 1971 A.D.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शोध-पत्रिकाएँ

१. **अनेकान्त** (मासिक)—सम्पादक : पं० जुगलकिशोर मुख्तार, समन्तभद्राश्रम, करौलबाग, दिल्ली।

वर्ष	किरण	मास	वीर नि० सं०	वि० सं०	ई० सन्
१	३	माघ	२४५६	१९८६	१९२९
१	४	फाल्गुन	,,	,,	,,
१	५	चैत्र	,,	१९८६	१९२९
१	६-७	वैशाख-ज्येष्ठ	,,	१९८७	१९३०
१	८-९-१०	आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद	,,	,,	,,
१	११-१२	आश्विन-कार्तिक	,,	,,	,,

अनेकान्त (मासिक) के निम्नलिखित अंकों का सम्पादन-स्थान : वीरसेवा मंदिर, समन्तभद्राश्रम, सरसावा (जिला-सहारनपुर) उ० प्र०।

वर्ष	किरण	मास	वीर नि० सं०	वि० सं०	ई० सन्
२	३	पौष, जनवरी	२४६५	१९९५	१९३८
२	५	फाल्गुन, मार्च	,,	,,	१९३८
२	६	चैत्र, अप्रैल	,,	१९९६	१९३९
२	९	आषाढ़, जुलाई	,,	,,	१९३९
२	१०	प्रथम श्रावण, अगस्त	,,	,,	१९३९
४	१	फरवरी	—	१९९८	१९४१
५	१०-११	कार्त्तिक-मार्गशीर्ष, नवम्बर-दिसम्बर	२४६९	१९९९	१९४२
५	१२	पौष, जनवरी	,,	,,	१९४३
६	१०-११	मई-जून	,,	२००१	१९४४
६	१२	श्रावण शुक्ल, जुलाई	२४७०	२००१	१९४४
७	१-२	भाद्र०-आश्विन, अगस्त-सितम्बर	,,	,,	१९४४
७	३-४	कार्त्तिक-मार्गशीर्ष अक्टूबर-नवम्बर	२४७१	२००१	१९४४

वर्ष	किरण	मास	वीर नि० सं०	वि० सं०	ई० सन्
७	५-६	पौष-माघ			
		दिसम्बर-जनवरी	,,	,,	१९४४-४५
७	७-८	फाल्गुन-चैत्र, फर०-मार्च	२००१-२	,,	१९४५
८	२	फरवरी			१९४६
८	३	—	—	—	—
८	४-५	—	—	—	—
८	१०-११	मार्च-अप्रैल	२४७३	२००४	१९४७
८	१२	आश्विन, अक्टूबर	२४७३	,,	१९४७

(वर्ष ८ के **मास-सम्बन्धी अनियमित उल्लेख** के कारण का निर्देश इसी अंक (अक्टूबर १९४७) के आवरण पृष्ठ २ पर किया गया है।)

वर्ष	किरण	मास	वीर नि० सं०	वि० सं०	ई० सन्
९	१	—	—	—	—
१४	६	माघ, जनवरी	२४८३	२०१३	१९५७
२८	१	महावीर निर्वाण विशेषांक	२५०१	२०३२	१९७५
४६	२	अप्रैल-जून	२५१८	२०५०	१९९३

२. **जिनभाषित** (मासिक) मई २००३—सम्पादक : प्रो० रतनचन्द्र जैन, भोपाल, म०प्र०। प्रकाशक—सर्वोदय जैन विद्यापीठ, १/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा (उ०प्र०)।

३. **जैन सिद्धान्त भास्कर** (भास्कर) मासिक

भाग	किरण	मास	ई० सन्
९	१	जून	१९४२
१०	२	जुलाई	१९४३
११	१	जून	१९४४
१३	२	—	—
२३	२	—	—

४. **जैनहितैषी** (मासिक)—सम्पादक और प्रकाशक : श्री नाथूराम प्रेमी।

भाग	किरण	मास	वीर नि० सं०	ई० सन्
६	७-८	वैशाख-ज्येष्ठ	२४३७	१९१०
७	९	आषाढ़	२४३७	१९१०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भाग	किरण	मास	वीर नि० सं०	ई० सन्
७	१०-११	श्रावण-भाद्र	२४३७	१९१०
८	२	मार्गशीर्ष	२४३८	१९११
११	१०-११	श्रावण-भाद्र	२४४१	१९१४

५. **धर्ममंगल** (मासिक), १६ मई १९९७—सम्पादिका : प्रा० सौ० लीलावती जैन। ४/५, भीकमचंद जैननगर, जलगाँव (महाराष्ट्र)।

६. **प्राकृतविद्या,** जनवरी-मार्च १९९६—सम्पादक : डॉ० सुदीप जैन । (प्राकृत भवन), १८-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली—११००६७।

७. **शोध** (साहित्य-संस्कृति-गवेषणा-प्रधान पत्रिका), अंक ५/१९८७-८८ ई०—सम्पादक : डॉ० बनारसीप्रसाद भोजपुरी एवं डॉ० राजाराम जैन। नागरी प्रचारिणी सभा आरा (भोजपुर, बिहार)। अंक १२-१३ (संयुक्तांक)/ई० सन् १९९९-२०००, २०००-२००१। सम्पादक : प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन।

८. **शोधादर्श**—४८, नवम्बर २००२ ई०—प्रधान सम्पादक : श्री अजितप्रसाद जैन। सहसम्पादक : श्री रमाकान्त जैन। प्रकाशक : तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ २२६ ००४।

९. **श्रमण** (त्रैमासिक शोध पत्रिका—सम्पादक : प्रो० सागरमल जैन। पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी)।

— १. अक्टूबर-दिसम्बर १९९७ ई०।

— २. जुलाई-दिसम्बर २००५ ई०।

— ३. अप्रैल-जून २००६ ई०।

English Journals

1. Bombay University Journal, May 1933. (Yāpanīya Saṇgh, A Jaina Sect : Dr. A.N. Upadhye)

2. The Indian Antiquary : A Journal of Oriental Researeh in Archaeology, History, Literature, Languages, Philosophy, Religion, Folklore etc.

— 1. Vol. XIV, January 1885.

— 2. Vol. XX, October 1891.

— 3. Vol. XXI, March 1892.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in